संसार के महान् राष्ट्र निर्माता

लेखक

भारत सन् ५७ के बाद, संसार की भीषण राज्यक्रान्तियाँ
आदि के रचयिता

पं० शंकर लाल तिवारी 'बेढब'

प्रथम संस्करण } सेप्टेम्बर १९३६ { मूल्य [illegible]

प्रकाशक—
चौखम्बा एण्ड सन्स,
बनारस सिटी।

भूमिका

आज का संसार प्राचीन संसार से सर्वथा भिन्न है। हमारे सामने आज जो गुत्थियाँ उपस्थित हैं वे प्राचीन समय में नहीं थीं। आज के युग में एक छोटा-सा मनुष्य भी अपनी शक्ति द्वारा राष्ट्र का प्रधान बन सकता है। संसार सदा ही से युग-परिवर्तनवादी महापुरुषों को जन्म देता आया है, यह उसका अटल नियम है। एशिया में महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, ऋषि दयानन्द, कमालपाशा, डा० सनयातसेन सरीखे महापुरुषों ने अपनी पूर्वीय-मर्यादा और मानव-सभ्यता को स्थिर रखते हुए जनसत्तात्मक प्रणाली को जन्म दिया। यूरोप में लेनिन डीवेलेरा, हिटलर और मुसोलिनी ने अपनी अद्भुत शक्तियों का चमत्कार दिखलाया।

थोड़े ही इने-गिने क्षणों में इन महान् पुरुषों ने संसार की काया-पलट कर दी। समाज के कलंकों को धोने और संसार से नर-पिशाचता को दूर करने में इन महापुरुषों ने जो-जो कार्य अपने जीवन में किये हैं, उनका संक्षिप्त इतिहास ही इस पुस्तक में दिया गया है। भारतीय महापुरुषों की उज्ज्वल राजनीति और अहिंसात्मक कार्य क्रम संसार के सभी आन्दोलनों से भिन्न है। भारतीय राष्ट्रवादियों ने एशिया की ही नहीं परन्तु समस्त संसार की मानवता की रक्षा की है। इस सभ्यता के विकास में स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द और रामकृष्ण नाम उल्लेखनीय हैं।

युग के बाद युगों का परिवर्तन हुआ। कभी संसार में नूतन सभ्यता का विकास हुआ, और कभी वह नष्ट हो गया। समुद्र के हिलोरों की तरह संसार में विकास की तरंगें उठती और डूबती रहीं,

अब भी वर्तमान युग में संसार भीषण नर-संहार की ओर बढ़ रहा है। संसार के संचालकों ने जो शक्तियाँ प्राप्त की हैं, उनसे मानव-समाज की सभ्यता और क्रांति खतरे में हैं। इस नवीन युग में सबसे मुख्य समस्या तो यह है कि यूरोपीय महापुरुषों ने ईश्वर की सत्ता को मानने से इन्कार कर दिया। रूस का बोलशेविज्म ईश्वरीय सत्ता को नहीं मानता। इटली और जर्मनी भी ईश्वर की सत्ता के आधीन नहीं। हिटलर और मुसोलिनी के सिद्धान्तों में ईश्वरवाद को स्थान नहीं। इससे आगे के भविष्य में भीषण नर-संहार की तैयारी जो न्याय और अधिकार के नाम से होगी, उसके परिचालक वही महापुरुष होंगे, जिनके जीवनचरित्र इस पुस्तक में दिये गए हैं।

परन्तु भारत के महापुरुषों पर यह कलंक नहीं लग सकेगा। भारत का विधान एक ऐसा विधान है, जिसपर संसार की सारी विद्वत्ता, विज्ञान और फिलासफियाँ चकित हैं। ब्रिटेन ही नहीं समस्त यूरोप महात्मा गांधी की फिलासफी पर चकित हैं। गांधीजी ने ससार की सभी राजनीतियों पर अपना उज्ज्वल प्रभाव डाला है। गत ३०० वर्षों में संसार रूढ़िवाद और अंध-विश्वासों से जकड़ गया था। दकियानूसी रिवाजों की भयंकरता से मानव-समाज पर अनेकों कुठाराघात होने लगे थे। संसार का आधे से अधिक नर-समूह भेड़-बकरियों की तरह हाँका जाता था। आज ये तमाम रूढ़ियाँ दफ़ना दी गईं। अब यह देखना है कि परिवर्तनवादी महापुरुष इस नवीन युग में संसार की नाव कौन से किनारे लगाते हैं।

शंकरलाल-तिवारी

रूसी राज्यक्रान्ति के जन्मदाता

लेनिन-ट्राटस्की-देवी कैथराईन-स्टेलिन

(१) लेनिन का आत्म-चरित्र ।

(२) लेनिन का क्रांति-प्रवेश ।

(३) भयानक राज्यक्रांति ।

(४) राज-परिवार और ज़ार को प्राणदण्ड ।

(५) देवी कैथराईन ।

(६) क्रांतिकारियो का घोषणापत्र बादशाह के नाम ।

लेनिन

"लेनिन अपने युग का महात्मा था।"

उपरोक्त शब्द संसार के समस्त राजनीतिक विद्वानों ने कहे हैं। कार्ल मार्क्स, टालस्टाय और ऋषि दयानंद के बाद, संसार के महापुरुषों में लेनिन का नाम विस्मृत नहीं किया जा सकता। अत्याचारी और स्वेच्छाचारी युग में वह सूर्य की भाँति चमका और अदृश्य हो गया। मदान्ध शासकों का अंत कर देने के लिये ऐसी विभूतियाँ सदा से जन्म लेती चली आई हैं। सन् १९१४ के पहिले यह कौन जानता था, कि शक्तिशाली-सम्राट ज़ार का राजपरिवार नामशेष कर दिया जायेगा। जिसकी उँगलियों पर संसार नाचता था, जिसके संकेत पर लाखों सिपाही शीश कटाने के लिये हमेशा तैयार रहते थे, जिसकी हुँकार से

संसार के राष्ट्र कांप उठते थे, जिसकी मैत्री के लिये ब्रिटेन और फ्रांस सरीखे शक्तिशाली राष्ट्र सदा उत्सुक रहते थे, जिस ज़ार को संसार यूरोप का शेर "*Tiger of Europe*" कहता था, वह एक दिन लेनिन के पञ्जे में फँस गया और गोलियों का निशाना बना दिया गया।

जिसे स्वप्न में भी ध्यान नहीं था, कि कभी श्रमजीवी और किसानों का राज्य स्थापित होगा, जो बात हवा में उड़ाई जा रही थी, उस असंभव को संभव कर दिखानेवाला रूस का वीर-सिपाही लेनिन था। कार्ल-मार्क्स और टाल्सटाय के सिद्धांत तूफानी आँधी में ऐसे उड़े, कि घर घर में इनकी पुस्तकों का प्रचार हो गया। लेनिन, कार्ल-मार्क्स के सिद्धांतों का शिष्य था। टाल्सटाय के सिद्धांतों का भी इसने अध्ययन किया था। दोनों महान् पुरुष इसके राजनीतिक गुरू थे।

लेनिन का जन्म सन् १८७० ई० की १० वीं अप्रैल को सिम्बरस्क नामक शहर में हुआ था। उसके माता-पिता बड़े ही विद्वान और धार्मिक पुरुष थे। पिता, सम्राट ज़ार के शिक्षा विभाग के प्रधान संचालक थे! लेनिन की माता मेरिया-एलक्ज उच्च कोटि की विदुषी महिला थीं। वह अपने बच्चों का लालन-पालन और उनकी शिक्षा का विशेष ध्यान रखती थीं। लेनिन की माता ही ने उसे पूर्ण विद्वान एवम् एक महान् पुरुष बनाने में सहयोग दिया। लेनिन का एक बड़ा भाई एलेक्जेण्डर-युलिओनोव और तीन बहिनें थीं। लेनिन का बड़ा भाई एक षडयन्त्र केस में पकड़ा गया। ज़ार की हत्या करने का आरोप लगाकर उसे फांसी पर टांग दिया गया। अगर वह चाहता तो माफी माँगने पर छोड़ दिया जाता पर इसने माफी माँगने से साफ इन्कार

कर दिया। इस समय लेनिन की आयु सिर्फ १७ वर्ष की थी। बड़े भाई की फाँसी से उसका खून खौल उठा, वह असन्तोष की आग को दबाकर मन ही मन रह गया। हो सकता है, उसने इस समय ज़ार के सिंहासन को उलट देने की भीषण-प्रतिज्ञा कर डाली हो। भाई के प्राण-दण्ड से वह ज़रा भी विचलित नहीं हुआ। उस समय वह पीटर्सबर्ग में न्याय-शास्त्र का अध्ययन करना चाहता था, किन्तु वह ज़ार के हत्यारे का भाई होने के कारण प्रविष्ट नहीं हो सका। इस बन्दिश से लेनिन हताश नहीं हुआ। वह दिनोदिन विद्याध्ययन में बढ़ता ही चला गया। अनेक विपत्तियों का सामना करते हुए, उसने बैरिस्टरी की डिग्री प्राप्त कर ली। पर बैरिस्टरी से उसे घृणा पैदा हो गई। वह कानूनों को एक मज़ाक समझने लगा। अदालत की कार्रवाईयाँ उसे दिल्लगी मालूम होती थीं। वह प्रत्येक कानून का मज़ाक करता और उसे हँसी में उड़ा देता था। वकीलों और बैरिस्टरों के सामने वह क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ा देता था।

जर्मन साम्यवादी कार्ल-मार्क्स रचित ग्रन्थों के आधार पर उसने अपने भविष्य जीवन का कार्य-क्रम बनाया। उसने एक पग भी पीछे हटना अथवा उसमें तिलमात्र भी संशोधन करना अपने गुरू का अपमान करना समझा। उसका एक-मात्र उद्देश्य था, रूस में "श्रमजीवी"-साम्राज्य की स्थापना करना। उसने अपने अल्प जीवन में ही गाँव-गाँव और नगर-नगर में श्रमजीवी संस्थाएँ और किसान सभाएँ स्थापित कर लीं। मास्को और पीट्रोग्रेड राज्यक्रान्तियों के मुख्य केन्द्र थे। सन् १९०३ में लेनिन ने इस्कारा नाम का पत्र निकाला,

जिसके द्वारा मजदूरों की माँगें सरकार के सामने उपस्थित की गईं। कुछ समय के बाद "इस्करा" सरकार का कोपभाजन बना और वह बन्द कर दिया गया। पत्र को बन्द करके लेनिन ने जिनेवा और पेरिस की यात्रा की। इन दो स्थानों से सन् १९०७ में दो पत्र और निकाले, जिनमें पूँजीपतियों के विरुद्ध भयंकर लेख लिखे जाते थे। इन पत्रों से अमीरों के सिंहासन हिलने लगे। मजदूरों का प्रभाव दिनोंदिन जोर पकड़ने लगा। सन् १९०७ से लेकर सन् १९१४ तक रूस के मजदूरों में अपूर्व जाग्रति फैल गई। मास्को में मजदूरों का अपूर्व संगठन हुआ। ४० हजार मजदूर सोवियट सभा में सम्मिलित हो गए। इसी समय सन् १९१४ में पूँजीवाद का भयंकर युद्ध छिड़ गया। रूस भी ब्रिटेन के साथ युद्ध में उतरा। चारों तरफ भीषण युद्ध छिड़ गया। लेनिन ने कहा—"मजदूरो, इस युद्ध में सम्मिलित होना अधर्म है। यह युद्ध ग़रीबों को सदा गुलाम बना रखने के लिये लड़ा जा रहा है। इस युद्ध में लाखों बच्चे अनाथ और लाखों परिवार स्मशानवत् हो जावेंगे। अतः इस युद्ध में भाग लेना घोर पाप है।" उस समय जब कि यूरोप में युद्ध की भीषण ज्वाला जल रही थी, लेनिन अपने साथी जीनोवीफ़ के साथ गैलिशिया के पहाड़ों में अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये भीषण तपस्या कर रहा था। वह वहीं से रूस में बोलशेविज्म का प्रचार कर रहा था। ये चिनगारियाँ भीषण रूप से रूस में फैल रही थीं। मास्को में जंगी हड़तालें होने लगीं। हजारों मजदूर इन हड़तालों में सम्मिलित होने लगे। रूसी सरकार ने भी घोर दमन करना आरम्भ किया। मजदूरों पर खुलेआम गोलियाँ चलाई जाने लगीं।

इसके बाद लेनिन को स्विड्जरलैण्ड की सरकार ने अपने यहाँ से शीघ्र ही चले जाने की नोटिस दी। पर लेनिन अपने ४० बोलशेविक सरदारों सहित छिपा रहा।

सन् १९१७ में बोलशेविकों की अन्तिम विजय हुई। लाखों मजदूर और किसान श्रमजीवी लाल झंडे के नीचे आ गए। सामुहिक हड़तालों का होना आरम्भ हो गया। दूसरी तरफ रूसी सेना लड़ते २ थक गई और उनमें भी भीषण विद्रोह के चिन्ह प्रकट होने लगे। कई रणक्षेत्रों से विद्रोह के समाचार आने लगे। फौजें बाग़ी हो गईं। रूसी राजमंत्रियों ने परिस्थिति का अनुभव करके ज़ार को राजसिंहासन से उतार दिया। लेनिन अवसर देख शीघ्र ही रूस चल पड़ा। लेनिन और उसके साथी ट्रोज़की को पकड़ने के लिये रूसी-सरकार ने अनेकों उपाय किए परन्तु अन्त में असफल हुए। लेनिन ने रूस में पैर रखते ही सेना को भड़काने का प्रयत्न किया।—सेना को भड़काने के लिये जोशीला साहित्य वितरण किया गया, जिसमें लिखा था—"अफ़सरों को मारो,—सलाम न करो" आदि। फलतः अफ़सर लोग गोलियों के शिकार होने लगे। यह भीषण राज्यक्रांति समस्त देश में फैल गई। पीट्रोग्रेड और मास्को में खून की नदियाँ बह निकलीं। बोलशेविकों द्वारा बड़े-बड़े अमीरों और रईसों का खून दिन दहाड़े होने लगा। लेनिन का आतंक समस्त रूस में फैल गया। बोलशेविकों को आदेश देते हुए लेनिन ने कहा—"इन साँप के बच्चों को कभी मत छोड़ो। पूँजीवाद मानव-जाति की पीठ में जहरीला फोड़ा है। अतएव गरीबों के राज्य की स्थापना के लिए एक भी अमीर को जीवित

छोड़ना बोलशेविक-धर्म के विरुद्ध है। इस तरह लेनिन ने सन् १९१७ के नवम्बर मास में सोवियट सरकार कायम कर ली। रूस की तमाम बागडोर लेनिन के हाथ में आ गई। इस समय लेनिन अगर चाहता तो रूस का बादशाह हो सक्ता था। परन्तु उसने उस राजसिंहासन पर ठोकर मार दी। सारे देश को मजदूरों और किसानों की आधीनता में छोड़ते हुए उसने कहा था—

"आज हम संसार के इतिहास में सर्वप्रथम मजदूरों और किसानों का साम्राज्य स्थापित कर रहे हैं।"

रूस को एक आदर्श देश बनाकर वह १९२४ की २१ जनवरी को इस असार संसार से चल बसा।

रूस-सम्राट और राजपरिवार को प्राणदण्ड

रूस के अन्तिम सम्राट ज़ार निकोलस का परिवारसहित प्राण-दण्ड एक करुणाजनक और हृदयविदारक दृश्य है। ज़ार निकोलस अपने युग का निरंकुश अत्याचारी और प्रभावशाली शासक था। उसने अपने शासनकाल में प्रजातन्त्रवादियों का इतना घोर दमन किया था, कि उन कहानियों को लिखते हुए लेखनी काँप उठती है। उसकी खुफिया पुलिस का इतना अच्छा प्रबन्ध था कि पानी में गिरने वाली सुई का पता भी सहज ही में चल जाता था। इस पुलिस को "आकरैना" कहते थे। ऐसा कोई भी स्थान न था, जहाँ आकरैना-पुलिस के आदमी काम न करते हों। होटलों, स्कूलों, मोटरों, रेलवे स्टेशनों और तमाम कारखानों में आकरैना-खुफिया पुलिस के आदमी सर्वदा उपस्थित रहते

थे। लाब्रेरियों और तमाम स्वदेशी सभाओं के ये खुफिया वाले मेम्बर थे। मजदूरों और किसानों की सभाओं में भी ये पर्याप्त संख्या में काम करते थे। प्रत्येक चौराहे और बाज़ारों में खुफिया के सैकड़ों आदमी काम करते थे। सन्देह-जनक स्थानों और विशेषत. नेताओं पर इनकी विशेष दृष्टि रहती थी। एक-एक घंटे की रिपोर्ट इन्हें अपने दफ्तरों में भेजनी पड़ती थी। क्रांतिकारी दलों में क्रांतिकारियों के प्रतिक्षण का कार्यक्रम सम्राट के पास भेजा जाता था। समस्त रूस में 'आकरैना' का आतंक छाया हुआ था। सैकड़ों निर्दोष महान् पुरुष इस आकरैना की कृपा से फाँसी पर लटकाये गए, और सैकड़ों निर्वासित किए गए। साइबेरिया की दुर्गम पहाड़ियों में पत्तियाँ और घास खाकर अनेकों महापुरुषों ने अपने जीवन का त्याग किया था।

ज़ार निकोलस मदान्ध शासक था। उसके समय में हज़ारों नहीं बल्कि लाखों किसान गृह-विहीन हो गए। उनकी संपत्ति जप्त कर उन्हें भिखारी बना दिया गया। जब जब इन किसानों ने अपनी दरिद्र-गाथा सम्राट तक भेजने का प्रयत्न किया तभी वे गोलियों के शिकार बनाए गए। अनेक स्वतन्त्रता प्रेमियों को कत्ल करने और फाँसी देने का श्रेय ज़ार को ही प्राप्त था। जिस तरह ज़ार के जीवन का अन्त किया गया, वह संसार के राजाओं के लिये एक उदाहरण है। ज़ार को सिंहासनाच्युत कर, उसे रूस के प्रसिद्ध नगर इकेटीरनबर्ग की एक विशाल अट्टालिका में कैद कर दिया। साम्प्रत इस अट्टालिका में पोलिटीकल डिपार्टमेण्ट का दफ्तर है, और उसे इपैटविस्की-डॉम कहते हैं। इमारत के चारों तरफ ज़ार की निगरानी के लिये ३६ बोल्शेविक

सैनिक नियुक्त थे। इनके अतिरिक्त बोलशेविक सरकार की ओर से मशीनगनों का जबरदस्त पहरा लगा था। बाहर से देखने में यह इमारत बहुत बड़ी दीखाती थी। पर दुमंजिले पर केवल चार-पाँच ही कमरे थे, जिनमें समस्त राजपरिवार कैद था। यूरावस्की नामक जनरल के ही ऊपर इन सबों का भाग्य निर्भर था। दुमंजिले पर जाने के लिये एक जीना था। इसपर सिपाहियों का पहरा था। इसके बाद यूरा-वस्की का कमरा था, जिसमें वह दिन-रात रहता था। दूसरे कमरे में ज़ार, ज़रीना और उसका पुत्र था। तीसरे कमरे में ज़ार की चार पुत्रियाँ और एक दासी डेमोडोवा रहती थी। चौथे कमरे में खाने-पीने का प्रबन्ध था। इन कमरों में सिपाहियों को जाने की रोक न थी। राज कन्याएँ प्रायः इन सिपाहियों को देखकर डर जाती थीं।—

सन् १९१९ ईस्वी की १६ वीं जुलाई को मकान के चारों तरफ़ मशीनगनें लगा दी गईं। सिपाहियों का पहरा बढ़ा दिया गया। चारों तरफ आने जाने के रास्ते बन्द कर दिये गए। इसका एकमात्र कारण यह था कि सम्राट-भक्तों का एक विशाल दल सम्राट के छुड़ाने का प्रयत्न कर रहा था। सम्राट के सभी राजभक्त सेनापति जेक-दल के साथ में थे। यदि ज़ार बोलशेविकों के हाथ से छूट जाते, तो संभव था, आज रूस में श्रमजीवी-सरकार-स्थापित न हो पाती। बोलशेविक प्रजातन्त्र के सन्मुख यह महान् प्रश्न उपस्थित था, कि ज़ार के भाग्य का निर्णय किस तरह किया जावे। ज़ार को किसी दूसरे स्थान पर ले जाना असम्भव था, क्योंकि सम्राट को छुड़ाने के अनेकों प्रयत्न जारी थे। इन सभी षडयन्त्रों का पता लेनिन को लग गया। उसने यूरावस्की

को तार से सूचित किया कि अगर ज़ार छूटकर निकल भागेगा तो तुम्हें फाँसी दे दी जावेगी। इसलिए इकेटरिनवर्ग की प्रजातन्त्रीय सरकार ने राजपरिवार सहित ज़ार को खतम कर देने का हुक्मनामा यूरावस्की को भेज दिया।

यूरावस्की ठीक एक बजे रात को जार के कमरे में पहुँचा और उन्हें जगाकर कहा—"संभव है, जेक लोग आपके छुड़ाने के प्रयत्न में यहाँ आकर गोलियाँ चलाने लगें। और कहीं गोली चूककर इधर आ गई तो आप लोगों का अनिष्ट निश्चित है। अत: नीचे वाले कमरे में चलना ठीक होगा। इसी तरह जार की चारों पुत्रियाँ भी नीचे वाले कमरे में लाई गईं। साथ में बबर्ची-दासी और डाक्टर सहित कुल ११ प्राणी नीचे के कमरे में उपस्थित किये गए। ज़ार को अभी तक अपनी अंतिम घड़ियों की खबर नहीं थी। वह अपने साधारण कपड़े पहिनकर यूरा-वस्की के साथ नीचे चला आया। सब एक कतार में खड़े कर दिये गये। उनके सामने बोलशेविक सिपाही भरी हुई बन्दूकों के साथ उप-स्थित हुए। जरीना की छोटी पुत्री इस समय अपनी माता की उँगली पकड़े चारो ओर देख रही थी। जार की पहली लड़की २१ वर्ष की थी। इंगलैण्ड की साम्राज्ञी बनने की उसे पूरी आशा थी। छोटी लड़की टेम्सिया १७ वर्ष की थी। ये दोनों बहिनें अपनी अपूर्व सुन्दरता के लिये संसार में प्रसिद्ध थीं। इन दोनों की बड़ी ही शोचनीय मृत्यु हुई।

कमरे में पूरी शांति थी। परन्तु भयंकरता ने अपना साम्राज्य जमा लिया था। यूरावस्की और उसके साथियों ने अपने-अपने पिस्तौल

निकाल लिये। पिस्तौलों को देखते ही सभी के हृदय कांप उठे। महारानी ने हाथों से अपना मुँह ढक लिया। यूरावस्की ने जेब से एक हुक्मनामा निकाला, जिसको उसने पढ़ना आरम्भ किया। उसमें जार के उन काले कारनामों का विवरण था, जिनके कारण आज वह संसार से विदा किया जा रहा था—इसमें उन अभागों की करुण-कहानियाँ थीं, जो निर्दोष फाँसी के तख्ते पर लटकाए गए। उन अभागे किसानों और मजदूरों की आत्म-कथाएँ थीं, जो भूख की ज्वालाओं से पीड़ित होने पर भी सिपाहियों की गोलियों के निशाने बने थे। उन सैकड़ों अनाथ बच्चों के दृश्य थे, जिनके माता-पिता दुर्गम और भीषण स्थानों में राजद्रोह के अपराधों में कत्ल किए गए थे। यूरावस्की ने शांति-पूर्वक मृत्युदण्ड की आज्ञा जार परिवार को पढ़ सुनाया। इस आज्ञा के सुनते ही सभी घुटनों के बल बैठ गए। यूरावस्की के हाथों में पिस्तौल देखकर जार जरीना के सामने खड़े होकर कुछ कहना ही चाहते थे कि यूरावस्की ने शीघ्र ही तमंचा छोड़ दिया। गोली जार के मस्तक में लगी और वे गिर पड़े। पिस्तौल के चलते ही सिपाहियों ने गोलियाँ चलाकर समस्त परिवार की समाप्ति मिनट भर में कर दी। शाही परिवार का एक भी आदमी जीवित न बचा। यूरावस्की अपना काम समाप्त कर नीचे की ओर जाना ही चाहता था, कि छोटी लड़की जिसमें कुछ जान शेष थी—"माँ-माँ" कहकर चिल्ला उठी। सिपाहियों ने उसे संगीनों की नोक से छेदकर उसका काम समाप्त कर दिया। शव श्वेत कम्बल में लपेट बाहर खड़ी हुई फौज़ी मोटर पर लादकर कोपची नामक स्थान पर लाई गई। १७ जुलाई को सवेरे कोपची के भयानक जंगल में एक

चिता बनाई गई और एक के ऊपर एक ११ शव रखे गये। सबसे ऊपर जार की लाश थी। यूरावस्की ने गंधक का तेजाब और दो पीपे पेट्रोल छिड़क कर आग लगा दी। २४ घंटे तक ये लाशें जलती रहीं। इस तरह जार के समस्त परिवार का चिन्ह सदा के लिये संसार से मिटा दिया गया।

लेनिन के साथ रूसी-महिलायें

स्वेच्छाचारपूर्ण शासन और विलासमय जीवन ने रूस में हाहाकार मचा दिया था। ज़ार का नाम सुनते ही देश का देश काँप उठता था। लोग थर-थर काँपते थे, ज़ार का नाम सुनते ही छोटे से लेकर बड़ों तक के रोंगटे खड़े हो जाते थे। उसका फौलादी पञ्जा सारे देश पर फैला हुआ था। ऐश्वर्य और लक्ष्मी उसके कन्धे से कन्धा लगाए चल रही थी। क्योंकि इन पूँजीपतियों ने अपना कल्याण ज़ार के साथी बने रहने और देशवासियों के गले काटने और खून चूसने में ही समझ रक्खा था। रूस की करोड़ों जनता मिलकर भी ज़ार के अत्याचारों का विरोध नहीं कर सकती थी। उन्हें यह ज्ञात नहीं था, कि वे जिस आग को भड़का रहे हैं वह एक दिन रूस की कायापलट कर देगी। जमींदारों और पूँजीपतियों की सारी ऐश्वर्य-कला और वैभव एक दिन जमीन पर ठोकरें खाती दीख पड़ेगी। आखिर हुआ क्या? जिसकी आशा थी वही। क्रांति की यह प्रचण्ड ज्वाला बड़े बड़े राजप्रसादों और पूँजीपतियों के यहाँ से भड़की, और देखते ही देखते सारे देश में भड़क उठी। ग्रामीणों और मजदूरों में जाग्रति करती हुई यह क्रांति अन्त में अपने उद्देश्य में

सफल हुई और ज़ारशाही की हुकूमत का तख्ता उसके कल-पुरजों सहित पलट गया।

संसार के सभी देश इसकी प्रचण्ड ज्वालाओं से न बच सके। साम्राज्यवादी सभी देश लेनिन की इस कार्य-प्रणाली को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। पूँजीपति ऐसी संस्थाओं का घोर विरोध कर रहे हैं, फिर भी इस नवीन लहर को रोकने में असमर्थ हैं। अमानुषिक अत्याचारों की जब पराकाष्ठा हो जाती है, स्वेच्छापूर्ण शासन से जनता जब व्यथित हो जाती है, अमानुषिकता के आघात से प्रजा का वायु-मंडल जब क्रूरता के झकोरों में हिलोरें लेने लगता है, विलासमय जीवन बिताने में ही अधिकारी लोग जब अपना स्वर्ग समझने लगते है, तब हृदयविदारक आर्त-नादों से एक भीषण क्रांति उठती है। और उसके उठाने वाले दिव्य-शक्तियों के रूप में संसार में आते हैं। यह कोई नई बात नहीं है।

रूस-राष्ट्र का नारकीय जीवन प्रसिद्ध था। लाखों नर-नारी और अबोध बच्चे इस नरक में अपना जीवन बिता रहे थे। इस जीवन को नष्ट करने के लिये लेनिन संसार में आया और उसके जीवन के साथ लाखों नरनारी एक हो गये। नवयुवकों, किसानों और मजदूरों ने उसे इस बीसवीं सदी का उद्धारकर्त्ता माना। मर्द ही नहीं, स्त्रियों ने भी अपना सब कुछ निछावर कर रूस के नारकीय जीवन का अन्त कर दिया। रूस की इस इतिहास-प्रसिद्ध क्रांति में, स्त्रियों ने विशेष भाग लिया।

कैथराइन

रूस को ज़ारशाही के पंजे से छुड़ाने में कैथोराईन और देवी वीरा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। कैथोराईन ने एक स्थान पर लिखा है-"मेरे चारों ओर बसने वाले गरीब किसान सूर्योदय से पहिले उठते और अपने-अपने खेतों पर चले जाते। दिन भर ये गरीब किसान भिन्न-भिन्न स्थानों पर, खेतों-चरागाहों-घुड़शालों और बाग-बगीचों में काम करते और आधी रात के समय उन्हें छुट्टी मिलती। इतने पर भी ज़रा सी गल्ती हो जाने पर वे पीटे जाते और गालियों के शिकार होते थे। अधिक अपराध साबित होने पर ये किसान निर्वासित कर दिये जाते। किसानों के बालक स्वामियों के घरों की टहल करते थे। यदि कोई अपने बच्चे के लिये भोजन की प्रार्थना करता तो बड़ी निर्दयता से पीटा जाता।

कई बार अनेक नौकरों के पीटे जाने पर मैंने अपने पिता के चरणों में गिरकर स्वयं बचाया था। बहुधा मैं छिपकर उन घरों और झोपड़ियों में जाया करती थी, जहाँ ये अभागे रहते थे। कई एक वृद्धों को भी देखा जो कूड़ों के ढेरों पर पड़े रहते थे। छोटे-छोटे बच्चे शूकरों और कुत्तों के बर्तनों में पानी पीया करते थे।"

कैथोराईन इन सब दृश्यों को देख विचलित हो उठी। उसका कोमल हृदय मानवता के नाते प्रेम, दया और सहानुभूति से भर गया। इन सब अत्याचारों पर विचार करने पर कैथोराईन ने ज़ार को ही इसका दोषी पाया। अतएव उसने अपने कोमल हृदय को कठोर बनाया और ज़ार-शाही का अन्त करने का कठोर व्रत लिया। वह एक महान् क्रांति-कारिणी की सजीव प्रतिमा बन गई। उसने रूसी अबला-समाज में क्रांति की भीषण अग्नि प्रदीप्त कर दी। अबलाएँ, सबलाएँ बनकर राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करने लगीं। कैथराईन ने जिस मर्दानगी से काम लिया, उसे देखकर संसार चकित हो गया। इन देश-भक्त ललनाओं ने देश के लिये, और देश के लाखों गरीबों के लिये अपना-अपना घरद्वार, बाल बच्चे और विलासमय जीवन को त्याग दिया। जेलों में रहकर इन देवियों ने भीषण यन्त्रणायें सहीं। संसार के देशों में रूस ही एक ऐसा नरक-प्रधान देश था, जहाँ बन्दी स्त्रियों के साथ भी जेल के अधिकारी अपनी कामवासना-तृप्ति के लिये कुछ उठा न रखते थे। राजनैतिक कैदियों को ज़ार की ओर से दवा देने की मनाही थी। कैथोराईन ने क्रांतिकारियों की हीन दशा का वर्णन एक स्थान पर इस प्रकार किया है—"क्रान्तिकारियों की दशा बड़ी शोचनीय

है। उनलोगों को जो २ तकलीफें दी जाती हैं, वे संसार के महान् हत्यारों को भी नहीं दी जातीं। संसार के सभी कष्ट इन कैदियों को दिए जाते हैं। इन घोर कष्टों के कारण अनेक युवक-युवतियों ने अपने प्राण जेल में ही दे दिये। रूस के जेलखाने, विद्वानों-दार्शनिकों और इतिहासज्ञों के अजायब-घर थे। इन शिक्षित देशभक्तों में से अगर कोई रूस के जेलखानों में मर जाता तो उसकी लाश सड़कों पर फेंक दी जाती थी।"

इन्हीं खूँखार जेलों में उच्च कुल की रमणियों ने अपने जीवन को बड़े कष्ट के साथ बिताया। रूसी रमणियों ने अपनी संतानों को रूसी राज्यक्रांति में भाग लेने को तैयार किया। पत्नियों ने पतियों को और पतियों ने पत्नियों को उत्साहित किया। सामाजिक जीवन भी उस समय बड़ा कष्टमय था। समाज के कड़े बंधनों को तोड़कर ये महिलाएँ रूस के भीषण युद्ध में कूद पड़ीं। इन महिलाओं ने राज्यक्रांति में भाग लेने के लिये क्रांतिकारियों से शादी तक करली। सबसे पहिले रूस में क्रांतिकारी साहित्य का धड़ाधड़ प्रचार किया जा रहा था। ग्रामों में प्रचार की अधिक आवश्यकता थी, यह प्रचार स्त्रियों द्वारा किया गया। वास्तव में क्रांति की सफलता ग्राम-संगठन और मजदूरों के एका पर ही निर्भर थी। अतः क्रांतिकारियों ने होटलों-कारखानों और ग्रामों को ही पना कार्यक्षेत्र बनाया। स्त्रियों ने पुरुषों को प्रचार करने में सबसे अधिक सहायता दी। उस समय जब कि देश में स्वतंत्रता का महान् युद्ध छिड़ रहा था और एक तरफ जर्मनी की जंगी फौजें तथा दूसरी तरफ़ ब्रिटेन और रूस की फौजें लोहा लेने में लगी हुई थीं, क्रान्ति-

कारियों की ओर से कैथोराईन को इंगलैण्ड और अमेरिका की सहानु-भूति प्राप्त करने के लिये भेजा गया। इस वीर रमणी ने वहाँ जाकर अपने देश के लिये अपूर्व सफलता प्राप्त की। फल यह हुआ कि संसार के सभी राष्ट्रों का ध्यान रूस की ओर आकर्षित हुआ। कैथोराईन ने विदेशों से बहुत सा धन क्रांतिकारियों की सहायतार्थ प्राप्त किया।

सैकड़ों स्त्रियों के जत्थे जो ग्रामों और मजदूरों में काम कर रहे थे, जारशाही उन्हें कुचलने के लिये अपनी पूरी शक्ति लगा रही थी! देश भर में सी० आई० डी० का एकछत्र राज्य था। रूस के कोने-कोने में मच्छड़ों की तरह सी० आई० डी० भिनभिनाती दिखती थी। किसानों और मजदूरों में उच्च कुल की रमणियाँ जब घूमती हुई पाई जातीं, पकड़ कर जेलों में ठूँस दी जाती थीं। बहुत सी रमणियों ने अपनी सुन्दरता को तेजाब से इसलिये नष्ट कर दिया ताकि वे मजदूर स्त्रियाँ समझी जावें, और खुफिया पुलिस उन्हें पकड़ न ले। देश के लिये यह कितना उच्च त्याग था। इस तरह इन वीर रमणियों ने क्रांति की आग तमाम देश में फैला दी। एक दो नहीं हजारों सुन्दरियों ने तेजाबो से अपने रंग काले किये और मजदूरों तथा किसानों में क्रांति का लहर फैलाने लगीं। कितना हृदय-विदारक दृश्य था। मजदूरों में प्रचार करना साधारण कार्य न था। खुफिया-पुलिस की नजरों से छोटे-से-छोटा मच्छड़ भी भाग कर नहीं जा सकता था। जो स्त्रियाँ कारखानों में काम करती थीं, उन्हें अपनी वेष भूषा और नाम सब कुछ बदलना पड़ता था। कारखानों के मजदूरों का जीवन महान् कष्टमय था। सोलह घंटे काम करना पड़ता था और बाकी घंटों में खाना पीना और सोना।

इतना ही नहीं, बाकी समय में भी इन्हें काम पर जाना पड़ता था। १० या १५ मिनट की फ़ुरसत में जब मजदूर लोग बैठते थे, तभी ये देवियां उनको क्रांति की बातें सुनातीं, इनमें जोश और उत्साह पैदा करतीं।

गुप्त प्रचार समितियों में भी ये वीर देवियाँ बड़े साहसपूर्वक काम करती थीं। एक वीर रमणी के फैसले में एक न्यायाधीश ने लिखा था—अब हम क्रांति की भीषणता का अनुभव सहज ही में कर सकते हैं, जब कि क्रांतिकारियों की अभिनेत्री स्त्रियाँ तक बन सकती हैं। साथ ही ऐसे भयानक हत्याकांडों का प्रबन्ध भी कर सकती हैं, जिसका संबंध सीधे सम्राट से होता है। वास्तव में स्त्रियों ने रूसी क्रांति को जो अमरता प्रदान की, वह आज संसार के सन्मुख चमकते हुए सूर्य की तरह है। जब क्रांतिकारियों के पति जेलों में ठूँस दिये जाते, तब ये वीर-देवियाँ उनका स्थान ग्रहण कर लेती थीं। जब ये देवियाँ अपने पतियों से जेलों में मिलती थीं, तो गुप्त सीमित के अनेकों काम सहज ही में हो जाते थे। पुलिस के कठोर प्रबन्ध के कारण किसी विषय पर वहाँ बातचीत करना असम्भव था, फिर भी राजनैतिक बन्दियों ने गुप्त समितियों के आदेश से ऐसे उपाय ढूँढ़ निकाले थे, जिन्हें पुलिस के देवताओं को भी पता चलना असम्भव था। क्रांतिकारियों की स्त्रियाँ जब जेलों में अपने पतियों से मिलने जातीं तो क्रांति-सम्बन्धी बातें एक कागज़ पर लिख लेतीं, और उसकी गोली बना उस-पर चाँदी का मुलम्मा चढ़ाकर मुँह में दाब लेतीं थीं। जेल-कोठरी में जब पति-पत्नी एक दूसरे को चुम्बन करते तो वह गोली मुँह के भीतर

पहुँच जाती थी। इस तरह पत्नी तमाम कारखाईयों की रिपोर्ट जेल के भीतर अपने पति को दे आती थीं। स्त्रियाँ इस तरह एक नहीं सैकड़ों कार्य सहज ही में कर डालतीं थीं। अगर वे बीच में पकड़ ली जातीं तो वे बड़ी बहादुरी के साथ आने वाली मुसीबतों को सहतीं थीं। एक वीरांङ्गना फाँसी के तख्ते पर झूलती हुई, फाँसी की बाट जोह रही थी। जेल अधिकारियों ने उसे कालर खोलने को कहा। उसने शीघ्र ही कालर का बटन एक ही झटके में तोड़कर फाँसी की रस्सी अपने गले में डाल नीचे का तख्ता हटा दिया। इस तरह वह स्वयं फाँसी के झूले पर झूल गई। अधिकारी उसकी वीरता को देखकर चकित रह गए। इस तरह रूस की वीर-रमणियों ने अपने देश को आज़ाद बनाया।—

वैसे तो रूस का क्रांतिकारी इतिहास बहुत ही बड़ा है। उसका तो एक अलग ग्रंथ बनाया जा सक्ता है। ज़ार की निरंकुशता के प्रति वहाँ अनेक दलों का जन्म हुआ। अनेक वैध और अवैध मार्गों का अवलम्बन किया गया। अन्त में जब आन्दोलनकारियों के सभी उपाय असफल हो गए और ज़रा सी बातों पर देशभक्तों को कालापानी, निर्वासन और फाँसी की सज़ाएँ मिलने लगीं, तब क्रांतिकारियों ने मारकाट और गुप्त हथियारों का सहारा लिया। धीरे-धीरे क्रांतिकारी दल ने भीषण रूप धारण कर लिया। शुरू में छोटे मोटे अधिकारी गोलियों के शिकार बनाए जाने लगे। फिर स्वयं ज़ार को गोलियों का शिकार बनाया गया। एक बार उसकी स्पेशल ट्रेन उलटने का प्रयत्न किया गया, पर असफल हुआ। दूसरी बार डाइनामाईट से ज़ार के राजमहल को उड़ाने की कोशिश की गई परन्तु वह प्रयत्न भी असफल

रहा। अन्त में १३ मार्च सन् १८८१ को उसे सड़क पर मार गिराया। इस खून से रूस में भयंकर हलचल मच गई। क्रांतिकारियों का ज़ोरों से दमन होने लगा। इसके पश्चात् नवीन ज़ार राजसिंहासन पर बैठे। क्रांतिकारियों ने इनके नाम एक घोषणा-पत्र जारी किया—जिसमें जनता के अधिकारों की माँग पेश की गई थी।

घोषणा-पत्र

बादशाह सलमत! आपको इस समय जो मानसिक वेदना हो रही होगी, उसे यह कार्य-कारिणी कमेटी अच्छी तरह समझती है। पर तोभी यह इस बात को उचित नहीं समझती कि शिष्टाचार की खातिर इस घोषणा-पत्र को प्रकट न किया जावे। क्योंकि मनुष्य के लिये हार्दिक भावनाओं से भी एक बड़ी चीज़ है और वह है अपने देश के प्रति कर्तव्य। इस कर्तव्य के लिये हरएक नागरिक को, अपनी भावनाओं का और दूसरों की भावनाओं का बलिदान कर देने का अधिकार है। इसी कठोर कर्तव्य से विवश होकर हम बिना विलम्ब आपके सामने अपना वक्तव्य पेश करना चाहते हैं, क्योंकि वर्तमान घटनाओं को देखकर हमें भविष्य में भयंकर हलचल और खून की नदियों के बहने का भय हो रहा है। इसलिये इस कार्य में विलम्ब करना किसी प्रकार उचित नहीं।

"कैथोराईन" नहर पर जो रक्तरंजित घटना (ज़ार का खून) हुई, वह केवल संयोगवश अथवा अकस्मात् नहीं हुई थी और न उससे किसी को आश्चर्य हुआ। गत दस वर्षों के इतिहास को देखते

हुए यह घटना अनिवार्य थी और यही इसका वास्तविक महत्व है, जिसे भलीभाँति समझ लेना उस व्यक्ति का कर्तव्य है, जो भाग्यचक्र से एक राज्य के प्रधान पद पर विराजमान हुआ है।

"केवल वही मनुष्य जो सार्वजनिक जीवन के रहस्य को समझ सकने में सर्वदा असमर्थ है, इसप्रकार की घटनाओं को कुछ व्यक्तियों और गिरोह का अपराध बतला सक्ता है। पिछले दस वर्षों में क्रांतिकारियों का कड़े से कड़े उपायों द्वारा दमन किया गया। और इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिये भूतपूर्व ज़ार की गवर्नमेंट ने स्वाधीनता, जनता के हित, व्यवसाय और अपने आत्म-गौरव तक को भी तिलाञ्जलि दे दी थी। एक शब्द में कहा जावे तो गवर्नमेंट ने क्रांतिकारी आन्दोलन को दबाने के लिये अपनी शक्ति भर सब उपायों से काम लिया। पर तो भी दबने के बजाय उसकी वृद्धि होती गई। रूस की सर्वोत्तम शक्तियाँ और वहाँ के सबसे बढ़कर कर्मशील और बलिदान के लिये प्रस्तुत व्यक्ति आगे बढ़े और इस दल में समा गए। इस प्रकार पूरे तीन वर्ष से यह दल गवर्नमेंट के साथ जी तोड़कर युद्ध कर रहा है।

"बादशाह-सलामत !" आप इस बात को स्वीकार करेंगे, कि भूतपूर्व ज़ार की गवर्नमेंट में क्रिया-शीलता का अभाव नहीं था। निर्दोषी और दोषी समान रूप से फाँसी पर लटकाए गए। जेलखाने तथा कालापानी कैदियों से भर गये। नेता समझे जाने वाले दर्जनों व्यक्तियों को पकड़ कर मौत का दण्ड दिया गया। उन लोगों ने शान्तिपूर्वक अन्य शहीदों के समान प्रसन्नता के साथ अपने प्राण दे दिये। इससे

आन्दोलन रुक नहीं गया, वरन इसके विपरीत बराबर बढ़ता गया और उसकी शक्ति भी अधिक हो गई।

"बादशाह सलामत !"—क्रांतिकारी आन्दोलनों का आधार व्यक्तियों पर नहीं होता। यह समाजरूपी शरीर की एक क्रिया है, और वे मृत्यु-स्तम्भ, जिनपर इस क्रिया के करने वाले मुख्य प्रतिनिधियों को चढ़ाया जाता है। इसको रोक सकने में और वर्तमान शासन प्रणाली की रक्षा कर सकने में सर्वथा असमर्थ हैं।"

"गवर्नमेण्ट जब तक चाहे लोगों को गिरफ्तार कर सकती है और फाँसी पर चढ़ा सकती है। सम्भव है कि वह किसी एक क्रांतिकारी दल को दबाने में समर्थ हो जाय। हम यहाँ तक स्वीकार करने को तैयार हैं कि वह क्रांतिकारी दल के मूल संगठन को भी नष्ट करने में शायद सफलता पा जाये, पर इससे परिस्थिति को नहीं बदला जा सकता। अमानुषिक घटनाओं के फलस्वरूप रूस निवासियों में नये-नये क्रांतिकारियों का जन्म हो जायगा।

"कठोर उपायों द्वारा समस्त देश को दबाया जा सकना, और देश में फैले हुए असन्तोष को दबा सकना तो और भी असम्भव है। इसके विपरीत कठोर उपायों से लोगों की कटुता, क्रियाशीलता और शक्ति अधिक बढ़ती है। इससे स्वभावतः जनता का संगठन मजबूत होता जाता है और वे अपने अग्रगामियों के अनुभव से लाभ उठाते हैं। इस प्रकार जैसे जैसे समय बीतता जाता है, क्रांतिकारी दल की संख्या और क्षमता बढ़ती जाती है। ठीक यही हमारा हाल है। गवर्नमेण्ट ने सन् १८७४ के 'डालसिजो' और 'किकोवजी' आन्दोलनकारियों का

दमन करके क्या पाया ? दल के भीतर अन्य नेता, जो उनकी अपेक्षा अधिक दृढ़ थे, उत्पन्न हुए और उनके स्थान पर काम करने लगे।"

"गवर्नमेण्ट के १८७८ और १८७९ के दमन ने उग्र क्रांतिकारी दल को जन्म दिया। सरकार ने कोवालस्की, डुत्रोविन, ओसीनिस्की, लिसगुब की हत्या की। कितने ही क्रान्तिकारी दलों को नष्ट कर डाला, पर इससे कोई काम न हुआ। विकासवाद के प्राकृतिक चुनाव क नियमानुसार हीन संगठनवाले दलों के स्थान पर उत्तम संगठनवाले दलों का जन्म होता गया। अन्त में यह कार्यकारिणी कमेटी उत्पन्न हुई, जिसके विरूद्ध गवर्नमेण्ट बिना किसी प्रकार की सफलता पाये अभी तक उद्योग कर रही है।

अगर हम पिछले दुखप्रद दस वर्षों पर निष्पक्ष भाव से दृष्टि डालें तो हम सहज में स्पष्टरूप से जान सकते हैं कि अगर गवर्नमेण्ट अपनी नीति न बदले तो क्रान्तिकारी आन्दोलन का क्या भविष्य होगा ? इसकी वृद्धि होगी, इसका विस्तार बढ़ता जायगा, उग्र क्रान्तिकारियों के कार्यों के कारण लोगों का ध्यान अधिकाधिक आकर्षित होने लगेगा, और क्रान्तिकारियों का संगठन अधिक सर्वाङ्गपूर्ण और शक्तिशाली बनता जायगा। इसी बीच में जनता के असन्तोष को बढ़ाने के लिये नये २ कारण उत्पन्न होते रहेंगे और गवर्नमेन्ट पर से जनता का विश्वास निरन्तर कम होता जायेगा। क्रान्ति का विचार, उसकी सम्भावना और उसकी अनिवार्यता बराबर जड़ पकड़ती जायगी।

अन्त में एक भीषण स्फोट, एक खूनी क्रान्ति और देशव्यापी उथल पुथल के फलस्वरूप प्राचीन प्रणाली का सदा के लिये नाश हो जायगा।

बादशाह सलामत ! यह एक बड़ी दुखप्रद और भयंकर बात है। निःसन्देह यह दुखप्रद और भयङ्कर है। यह मत केवल शाब्दिक नहीं है। हम किसी भी अन्य व्यक्ति से बढ़कर अनुभव करते हैं कि इस नाश और खून खराबी में बहुत अधिक ज्ञानशक्ति और कार्यशक्ति का क्षय होगा और यह बड़ी विपत्ति की बात होगी। इसी ज्ञानशक्ति और कार्यशक्ति का उपयोग अन्य प्रकार की परिस्थिति में लाभकारी कार्यों के लिये किया जा सकता है। इसके द्वारा सर्वसाधारण के ज्ञान की वृद्धि की जा सकती है और सर्वसाधारण का बहुत कुछ हित साधन हो सकता है।

"प्रश्न किया जायगा कि इस खून खराबी की आवश्यकता ही क्या है।"

बादशाह सलामत ! इसका कारण यह है कि हमारे देश में न्यायशील-गवर्नमेण्ट का अभाव है। गवर्नमेण्ट जिन मूल सिद्धान्तों पर आधार रखती है, उनके अनुसार उसका कर्त्तव्य है कि वह लोगों की आकांक्षाओं के प्रतिबिम्बस्वरूप और लोगों की इच्छाओं को पूर्ण करना ही उसका ध्येय हो। पर यदि आप बुरा न मानें तो, हमारे यहाँ की गवर्नमेण्ट गुप्त चाल चलने वाले दरबारियों का एक गिरोहमात्र है। इसे यदि लुटेरों का दल कहा जाय तो भी कुछ अत्युक्ति नहीं है।

बादशाह के निजी विचार कैसे भी हों, सरकारी अधिकारियों के कामों से जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति और उसके हित का कोई आभास नहीं मिलता।

रूस की गवर्नमेंट बहुत दिनों से लोगों के व्यक्तिगत स्वाधीनता

का अपहरण कर चुकी है और उनको सरदारों या जमीन्दारों का गुलाम बना चुकी है।

अब वह सट्टेबाजों और गरीबों को लूटनेवाले नौकरों की भी सृष्टि कर रही है। जितने सुधार किये जाते हैं उनके फलस्वरूप जनता की दशा पहले की अपेक्षा और भी खराब होती जाती है। रूस की गवर्नमेंट ने साधारण जनता को ऐसा दरिद्र और दुर्दशाग्रस्त बना दिया है कि वह किसी सार्वजनिक हित के लिये भी स्वतंत्रतापूर्वक उद्योग नहीं कर सकती और न खास अपने घरों में होने वाले कलङ्कपूर्ण धार्मिक अन्यायों से अपनी रक्षा कर सकती है।

केवल खून चूसने वाले सरकारी अधिकारी, जिनको अपने पाप-कर्मों के लिये कोई सजा नहीं मिलती गवर्नमेण्ट कानून के द्वारा सुर-क्षित रहते हैं, और सुख भोगते हैं।

इसके विपरीत उस ईमानदार आदमी को, जो सार्वजनिक हित के लिये परिश्रम करता है, क्या २ यन्त्रणायें नहीं भोगनी पड़तीं। बाद-शाह सलामत, आप स्वयम् अच्छी तरह जानते हैं कि जिन लोगों पर अत्याचार किये जाते हैं या जिनको देश निकाला दिया जाता है वे सब क्रान्तिकारी नहीं होते।

यह किस तरह की गवर्नमेण्ट है, जो इस प्रकार देश में शान्ति कायम रखती है? क्या यह वास्तव में लुटेरों का दल नहीं है?

यही कारण है कि रूस में जनता के ऊपर गवर्नमेंट का कोई नैतिक प्रभाव नहीं है, यही कारण है कि रूस में इतने अधिक क्रान्तिकारी पाये जाते हैं, यही कारण है कि जार के खून जैसी घटनाओं को देखकर

भी लोग केवल सहानुभूति प्रकट करके चुप हो जाते हैं। बादशाह सला-मत, आप खुशामदियों की बातों के भुलावे में न पड़े। भूतपूर्व जार की हत्या को लोगों ने बहुत अधिक पसन्द किया है।

इस दशा से छूटने के केवल दो ही मार्ग होंगे। या तो राज्यक्रांति होगी, जो लोगों को फाँसी पर चढ़ाने से न स्थगित की जा सकती है और न रोकी जा सकती है। अथवा बिना विलम्ब देश की सर्वोच्च सत्ता जन-साधारण के सुपुर्द कर दी जाय, जिससे वे शासन संचालन में भाग ले सकें।

देशहित की दृष्टि से, ज्ञानशक्ति तथा कार्यशक्ति के निरर्थक क्षय और उन भयंकर घटनाओं को रोकने के लिये, जोकि राज्यक्रांति के साथ सदैव हुआ करती हैं, कार्यकारिणी कमेटी श्रीमन् के सन्मुख वक्तव्य पेश करती है और आपको सम्मति देती है कि आप दूसरे मार्ग का अवलम्बन करें। आप यह विश्वास रक्खें कि जिस दिन से सर्वोच्च सत्ता (जारशाही) की निरङ्कुशता का अन्त हो जायगा और यह दिखला देगी कि उसने अब केवल जनता की इच्छा और आन्त-रिक कामना के अनुसार कार्य करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है, उसी दिन से आपको अपनी खुफिया पुलिस से भी छुटकारा मिलजायेगा जो गवर्नमेण्ट की बदनामी का कारण है। आप अपने शरीर-रक्षकों को बारकों में वापस भेज सकेंगे, फाँसी के स्तम्भों को जला सकेंगे, जिनसे जनता का नैतिक पतन होता है।

'"तब यह कार्यकारणी कमेटी भी बिना विलम्ब अपनी कार्रवाइयों को बन्द कर देगी और उसने जिन शक्ति और साधनों का संग्रह किया

है उनको आजाद कर देगी, जिससे वे सभ्यता और संस्कृति का प्रचार और जनता के कल्याणार्थ अन्य उपयोगी कार्य कर सकें।

"तब एक शान्तिमय विचार-संग्राम का श्रीगणेश होगा और उस रक्त-रंजित आन्दोलन का अन्त हो जायगा जो हमको आपके सेवकों की अपेक्षा अधिक पसन्द है और जिसको हमने केवल आवश्यकता से विवश होकर ग्रहण किया है।"

"हम पुरानी घटनाओं से उत्पन्न पक्षपात और अविश्वास को त्यागकर श्रीमान् के सामने यह वक्तव्य पेश करते हैं। हम इस बात को भुला देंगे की आप एक ऐसी सत्ता के प्रतिनिधि हैं जिसने लोगों को छला है और बहुत अधिक हानि पहुँचाई है। हम आपको एक नागरिक भाई और ईमानदार आदमी की तरह मानकर आपके सामने यह वक्तव्य पेश करते हैं।

"हम आशा करते हैं कि व्यक्तिगत रोष का भाव आपके कर्त्तव्य मार्ग अथवा सत्य की जिज्ञासा को दबा नहीं सकेगा।"

"हम भी रोष कर सकते हैं। आपको तो अपने पिता से ही वंचित होना पड़ा है परन्तु हमको अपने पिता, भाई, पत्नी, पुत्र और आत्मीय मित्रों से वंचित होना पड़ा। तो भी हम समस्त व्यक्तिगत द्वेष को भूल जाने को तैयार हैं, अगर रूस के कल्याण के लिये वैसा करने की आवश्यकता हो। और हम आप से भी इसी प्रकार की आशा रखते हैं।

"हम आप के सामने किसी तरह की शर्तें पेश करना नहीं चाहते। क्रान्तिकारी आन्दोलन का अन्त होकर उसके स्थान में शान्ति-

मय विकास का आरम्भ होने के लिये जिन शर्तों की आवश्यकता है, वे हमारे द्वारा निश्चित नहीं की गई हैं, वरन् घटनाओं ने उनको जन्म दिया है। हम केवल यहाँ पर उनको लिपिबद्ध कर देते हैं। हमारी सम्मति में इन शर्तों का आधार इन दो मुख्य बातों पर है।

"सब से प्रथम समस्त राजनैतिक कैदियों को राजाज्ञा द्वारा छोड़ दिया जावे क्योंकि इनलोगो ने कोई अपराध नहीं किया है, केवल नागरिक की हैसियत से अपने कर्त्तव्य का पालन किया है।

"दूसरी बात यह है कि समस्त जनता के प्रतिनिधियों की एक सभा की जाय और उसमें निश्चय किया जाय कि किस प्रकार का सामाजिक और राजनीतिक संगठन जनता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुकूल हो सकता है। पर साथ ही हम यह बतला देना भी आवश्यक समझे हैं कि जनता के प्रतिनिधियों द्वारा शासन-सत्ता का नियमन उसी दशा में हो सकता है जब की चुनाव बिना किसी प्रकार के दबाव के हो। इसलिये चुनाव के पूर्व नीचे लिखी शर्तों का पूरा किया जाना आवश्यक है:—

(१)—शासन-सभा के सदस्यों का चुनाव बिना किसी प्रकार के भेदभाव के जनता को समस्त श्रेणियों द्वारा और नागरिकों की संख्या के अनुपात के अनुसार हो।

(२)—शासन-सभा के उम्मेदवारों और वोटरों के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शर्त न लगाई जाय।

(३)—चुनाव और चुनाव के लिये आन्दोलनपूर्ण स्वाधीनता

पूर्वक हो और इसलिये सरकार शासन-सभा के चुनाव से पहले स्थायी रूप से ये आज्ञायें दे।

(क)—अखबारों की पूर्ण स्वाधीनता।

(ख)—भाषणों की पूर्ण स्वाधीनता।

(ग)—सार्वजनिक सभाओं की पूर्ण स्वाधीनता।

(घ)—चुनाव सम्बन्धी वक्तव्यों की पूर्ण स्वधीनता।

"केवल इन्हीं उपायों द्वारा रूस शान्तिमय और नियमानुकूल उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। हम अपने देश और समस्त संसार के सामने प्रतिज्ञा करते हैं कि ऊपर लिखी शर्तों के अनुसार जिस राष्ट्रीय शासन-सभा का संगठन होगा उसके सामने हमारी पार्टी बिना किसी प्रकार की शर्त के आत्म-समर्पण कर देगी। राष्ट्रीय शासन-सभा जिस प्रकार के शासन का निर्णय कर देगी, उसका जरा भी विरोध न करेगी।

"बादशाह सलामत—अब आप जो उचित समझें, निर्णय कर सकते है। हम अपने हृदय में यही आशा करते हैं कि आपका न्याय-भाव और आपका विवेक आपको वही निर्णय करने की सम्मति देंगे, जो कि रूस के कल्याण के लिये आपके बड़प्पन और देश के प्रति आपके कर्त्तव्य के अनुकूल हो।

यही क्रान्तिकारियों की माँग थी, जो उन्होंने एक एक बार नहीं, अनेक बार गवर्नमेण्ट के सामने पेश की। इसमें उन्होंने अपने लिये कोई खास अधिकार नहीं माँगे थे, वरन् उनका एकमात्र कथन यह था कि जनता का शासन जनता की सम्मति द्वारा हो। आजकल संसार

का कोई सभ्य मनुष्य अथवा सभ्य गवर्नमेण्ट इसे अनुचित अथवा अवैध नहीं बतला सकती। पर ज़ार की गवर्नमेण्ट ने इसका क्या जवाब दिया? अनेकों को फांसी, हजारों को कालापानी, अखबारों और समस्त उदार विचार रखने वालों का दमन। सत्ता के मद में चूर होकर उसने कार्यकारिणी कमेटी के सदुपदेशों को पागलों का बकवाद समझा, और ख्याल किया कि वह अपनी असीम शक्ति के द्वारा विद्रोही-दल का मूलोच्छेद कर देगी। उसे इस कार्य में बहुत कुछ सफलता भी मिली। उसने अगणित देशभक्तों को अपने जबर्दस्त पंजे में पीस डाला, पर उनके स्थान में नये और अधिक उत्साही लोगों का जन्म होता गया। अन्त में कार्यकारिणी कमेटी की भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई और ३६ वर्ष बाद जारशाही शासन का ही नहीं वरन जार और उसके वंश के बच्चे २ का नामोनिशान मिट गया।

लेनिन के बाद स्टालिन

लेनिन के समाधि लेने के बाद रूस के भाग्य-विधाता स्टालिन का समय आया। सन् १९३१ में बोलशेविक पंचवर्षीय योजना के उत्सव पर लेनिन की समाधि पर प्रेसिडेण्ट स्टालिन ने लाल-सेना और रूस की अगणित जनता के सन्मुख कहा था—

हमारे देश का इतिहास अगणित पराजयों से भरा है। मंगोलियनों ने रूस को पछाड़ा। जापान ने रूस को चारोखाने चित्त किया, टर्की के सैनिकों ने उसे हराया। यूरोप के छोटे-छोटे राष्ट्रों ने उसे धराशायी कर दिया। यह पराजय, फौजी ताकत, उद्योग-धन्धों और संस्कृति में

पिछड़े होने के कारण ही थी। अब हमें भूतकाल की घटना को आगे रखकर ऐसा यत्न करते रहना चाहिए, जिससे हममें अब पिछड़े रहने का भाव न आने पावे।

स्टालिन ने उपरोक्त घोषणा को शीघ्र ही कार्यरूप में परिणित कर दिया। संसार में आजतक स्वेज और पनामा की नहर प्रसिद्ध थी। लेकिन स्टालिन ने, लेनिनग्रांड को संसार का एक समुद्री बन्दरगाह बना डाला। संसार में इंजीनियरिंग की जितनी भी कलाएँ थी, सब इसी में भर दी गईं। यह रूस की सबसे जबरदस्त समुद्री ताकत है, जिससे वह अपने से अधिक बलवान शत्रुओं को अच्छी तरह परास्त कर सक्ता है। संसार के इतिहास में यह विराट परिवर्तन क्षणमात्र ही में हो गया। स्टालिन ने इसकी नस-नस में एक नवीन जीवन भर दिया, जिससे उसने कई बार संसार को लोहा लेने की चुनौती दे डाली।

इतना ही नहीं, मनुष्य-जीवन के साथ-साथ रूस का भूमंडल भी बदल गया। मास्को का संसार-प्रसिद्ध गिरजाघर नष्ट करके सार्वजनिक भवन बना दिया गया, जिसे सोवियट-राजमहल कहते हैं। संसार की बहुत सी पुरानी चीजें नष्ट कर दी गईं। रविवार की छुट्टी मिटाकर पूँजीवाद का चिन्ह तक मिटा दिया गया। शहरों के नाम भी बदल दिये गए। पिट्रोग्रेड के स्थान पर लेनिनग्राड रख दिया गया। मास्को की एक रसायन फैक्टरी का नाम स्टेलिनोग्रस्क रख दिया गया। साइबेरिया के अनेकों शहर जो नये बसाए गए हैं, उनका नाम भी स्टेलिनवाद के नाम पर रख दिया गया है। सोवियट ने सौ वर्षों का कार्य इन ८ वर्षों के भीतर ही कर डाला। साइबेरिया

में जहाँ अनेकों चरागाह बने थे, वहाँ आज कारखानों की बस्तियाँ बसा दी गईं हैं। ६ करोड़ मनुष्य इन कारखानों में अपने देश को स्वावलम्बी बनाने का महान् प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे प्रत्येक नागरिक भरपेट भोजन प्राप्त कर सकने में समर्थ हो सकें। सोवियट की विशाल उन्नति में कौन शामिल नहीं है ? मंगोलियन, काकेशियन, साइबेरियन आदि सभी जातियों का इसमें सहयोग है। जो सोवियट-प्रजातन्त्र के विरुद्ध हैं, वे भी इन उद्योग-धन्धों में सहयोग दे रहे हैं। सोवियट ने उद्योग-धन्धों में एक भीषण क्रांति मचा दी है। किसी भी देश ने आजतक ऐसा उदाहरण उपस्थित नहीं किया। सोवियट ने थोड़ी-सी अवधि में ही लाखों इंजीनियर, वैज्ञानिक, लेखक और वीर सैनिकों को जन्म देकर अपने देश को ससार से आगे बढ़ाया। स्टेलिन ने नवीन शिक्षा और सभ्यता के विकास के लिये प्राचीन-धार्मिकवाद उठा दिया। संसार के क्षेत्र में इतनी बड़ी काया-पलट कर देना, हँसी खेल नहीं। जहाँ सन् १९३० में ३५,४००००० टन कोयला खोदा जाता था, वहाँ सन् १९३५ ई० में ७,५०,००००० टन कोयला खोदा जाने लगा, और सन् १९३८ में ३० प्रतिशत और बढ़ा दिया गया। स्टील का व्यवसाय और उत्पादन वहाँ ३०-३२ लाख टन से भी कम था, आज एक करोड़ टन से भी अधिक है। कच्चे लोहे का उत्पादन जहाँ ३९ लाख टन था, अब एक करोड़ टन है। तेल का उत्पादन जहाँ सन् ३० में ११६००००० टन था, अब २२० लाख टन है। स्टालिन ने अपनी इस महान् सफलता पर पंच-वर्षीय वार्षिकोत्सव के उपलक्ष में महान् हर्ष प्रकट किया था। इस उद्योग-निर्माण में मजदूरों के वेतन में ७० फीसदी और

किसानों में १६ फीसदी वृद्धि हुई।

सोवियट के इस अपूर्व वरदान से मजदूरों और किसानों में युगों से बढ़ी हुई गरीबी नष्ट हो गई। आज किसानों और मजदूरों के बच्चे बड़े-बड़े विश्व-विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, और उद्योग-धन्धों की तरह-तरह की कलाएँ सीख रहे हैं। यूराल का धन-विहीन और निर्जन स्थान आज कला-कौशल का महान् केन्द्र है। यूरोप और एशिया की सीमा पर यह विराट निर्जन स्थान कारखानों का जंक्शन बना हुआ है।

सोवियट रूस के अस्तित्व से आज संसार का पूँजीवाद काँप रहा है। भीतरी राजनैतिक और आर्थिक स्थिति के विषय में स्टालिन ने अपनी सुदृढ़ व्यवस्थाएँ की हैं। मार्क्सवाद ही इस क्रांति का जन्मदाता है। मार्क्सवाद कितना सफल और जीवित आन्दोलन है, उसका लेनिन और स्टालिनवाद ही जीता-जागता उदाहरण है। स्टालिन का सबसे जबरदस्त विरोधी, ट्राटस्की है। स्टालिन और ट्राटस्की दोनों में भयंकर मतभेद है। अतएव दोनों परस्पर एक दूसरे के विरोधी हैं। अभी हाल ही में "*From Lenine to Stalin*" नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसके लेखक हैं, मि० विक्टर सर्ज "*Victor Seoze*"—जिसमें स्टालिन की व्यक्तिगत सत्ता और व्यक्तिगत शासन का विरोध किया गया है। ट्राटस्की का मत समाजवादी है। वह समाजवाद के आदर्श शासन-प्रणाली के पक्ष में है। कार्लमार्क्स भी कहीं-कहीं विशेष स्थानों पर समाजवाद को स्वीकार कर चुके हैं। ट्राटस्की आज निर्वासित हैं, पर उसके आदर्शवादी सिद्धांत रूस में

अपना काफी प्रचार कर रहे हैं। ट्राटस्की और उसके साथी जिनोवेंक और 'कार्ल रेडेक' स्टालिन से अधिक प्रतिभाशाली हैं। परन्तु राजनीतिक चालों में स्टालिन की ही सत्ता स्वीकार की जा रही है। हिटलर और स्टालिन की कार्य-प्रणाली में थोड़ा-सा मतभेद है। सोवियट सरकार का सिद्धांत हैं कि राष्ट्र के सभी व्यक्तियों को समान नागरिक अधिकार और भरपेट भोजन वस्त्र मिले। इसीलिये स्टालिन ने जनमत की प्रतीक्षा न कर मजदूरों और किसानों के जीवन-विकास की ओर ही विशेष ध्यान दिया है। आज अकेले रूस का ही नहीं परन्तु संसार के समस्त किसानों और मज़दूरों का अस्तित्व, स्टालिन-सिद्धान्तों पर निर्भर है।

यूराल की राजधानी में रूस का सबसे बड़ा कारखाना है, जिसके सामने जर्मनी के ईसन और क्रप के कारखाने कुछ नहीं हैं। स्टालिन को इस कारखाने पर बड़ा गर्व है और इसीलिए वह दुनियाँ के फासिस्टों को लड़ने की चुनौती देता है। अभी तक संसार से इस कारखाने को स्टालिन ने छिपा रक्खा था, पर अब ज्ञात हुआ है कि इसमें युद्ध के भीषण नरसंहार करने वाली सामग्रियाँ तैयार होती हैं, जिसकी कल्पना तक जर्मनी नहीं कर सकता। वर्जेन्स की रासायनिक फैक्टरी कायम कर स्टालिन ने वैज्ञानिक संसार में एक अपूर्व हलचल पैदा कर दी। एक वैज्ञानिक का कथन है कि यह फैक्टरी शांति के दिनों में खेतों को लह-लहा देने वाली खाद पैदा करती है, और युद्ध के दिनों में भीषण विस्फोटक पदार्थ बनाती है।

सोविएट की फौजी कलाएँ

रूस ने अपनी आत्म-रक्षार्थ जो कुछ भी इन आठ-दस वर्षों में

किया है वह संसार की आँखों में खटक गया। जब एक तरफ़ संसार के राष्ट्र अपने सुखों के लिये किसानों और मजदूरों का बलिदान करते हैं, तो दूसरी तरफ सोवियट ने यह सिद्ध किया है कि मजदूरों और किसानों के लिये भी संसार में न्याय का स्थान है। अगर रूस ने आरंभ से ही अपनी सैनिक-शक्ति बढ़ाई न होती तो उसे सम्राज्यवादी राष्ट्र कभी का पीस डालते। चीन और स्पेन के युद्धों में यह साबित हो चुका है कि रूस के पास इतनी ही प्रलयंकारिणी-शक्ति है, जितनी कि आज तानाशाही राष्ट्रों के पास है। स्पेन और चीन जो अपनी आत्म-रक्षा के लिये विद्रोहियों से लोहा ले रहे हैं उसमें सोवियट की सहायता है। अगर रूस की सीमा स्पेन के पास होती तो जनरल फ्रांको कभी का आत्म समर्पण कर दिये होता। चीन के प्रति रूस की जो सहानुभूति है और वर्तमान चीनी-जापानी युद्ध में रूस जो सहायता चीन को पहुँचा रहा है, उससे अगर जापान की जीत होती है तो संसार के बोल-शेविकों की धाक सदा के लिये उठ जाती है। परन्तु रूस को जापान हड़प नहीं कर सकता। स्टालिन ने रूस को अजेय बना दिया है। पूर्व में मंचूरिया के पतन के पश्चात् यह खतरा उठ खड़ा हुआ है कि न जाने कब रूस और जापान में लोहा बजने लगे। सोवियट ने पूर्व में अपनी अजेय किलेबंदी कर रखी है, जिससे जापान का कभी यह हौसला नहीं हो सकता कि वह रूस से छेड़छाड़ आरम्भ करे। पूर्व के हवाई अड्डों पर एक हजार बम वर्षा करने वाले जहाज़ सदा तैयार रहते हैं। ४०९ हवाई जहाजों का जमघट ब्लाडी-वास्टक के पास रहता है। जनरल ब्लेचर की एक घोषणा में कहा गया है, कि पूर्वीय तटों पर

२,५००,००० चुनी हुई सेना हमेशा तैयार रहती है। इसके सिवाय दो लाख किसान सैनिक हैं जो शांति के समय किसान और युद्ध के समय वीर-योद्धा हैं। तातारियों और कज्जाकों की फौजें जिनसे कभी एशिया काँप उठता था, सोवियट की सबसे बड़ी शक्तियाँ हैं—

संसार की सभी गति-विधियाँ रूस पर निर्भर हैं। यूरोप के फासिस्ट विरोधी सभी राष्ट्र सोवियट के मित्र हैं। बालकान राष्ट्रों की रक्षा की जिम्मेदारी सोवियट सरकार ने ली है। इधर फ्रांस और ब्रिटेन भी सोवियट की मित्रता पसन्द करते हैं, दूसरी तरफ फासिज्म का भूत उन्हें डरा रहा है। अमेरिका की पूरी सहानुभूति रूस की तरफ ही है। चिली, मैक्सिको और ब्राजील में बोलशेविकों का काफी प्रभाव है। रूसी-साम्यवाद का प्रभाव उद्योग-कलाओं के साथ ही साथ बढ़ता चला जाता है। भारतीय सरकार भी रूसी-क्रांति के पहिले मजदूरों और किसानों के आंदोलनों को दबाती रही। पर जब उन्हें सोवियट की सत्ता स्वीकार करनी पड़ी, तो फिर उसने किसानों और मजदूरों के प्रति सुधार योजनाओं की सृष्टि की। सन् १९३३ में जब संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने मजदूर सरकार को स्वीकार कर लिया, तब संसार में एक नवीन युग प्रारम्भ हुआ।

सोवियट को युद्ध के लिये किसी भी सामान की आवश्यकता नहीं। पेट्रोल के सिवाय कोयला, जस्ता, एलीम्यूनियम और लोहा बहुत अधिक तादाद में वह उत्पादन करने लगा है। रूस की लाल सेना के सम्बन्ध में तरह तरह की अफवाहें और समाचार प्रकाशित होते हैं। लालसेना रूस की जन-संख्या का एक विशाल संगठन है। यह मजदूर

और किसानों की एक जंगी फौज है, जो किसी भी समय लड़ाई के लिये तैयार रहती है। इस सेना में ४२ और ४५ प्रतिशत किसान और मजदूर हैं। इस सेना की व्याख्या करते हुए क्रिश्चियन-साइन्स मनीटर के संवाददाता ने लिखा था कि लाल सेना का संगठन वास्तव में सोवियट रूस की एक आश्चर्यजनक सफलता है। लालसेना की संख्या पहिले तो ५,६२००० थी लेकिन अब और बढ़ा कर १३,५००,०० कर दी गई है। इसके बाद टेरीटोरियल सेना है। नागरिक सेना भी एक अपूर्व संगठन है, इसमें एक करोड़ तीस लाख व्यक्ति हैं, जो युद्ध की शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं।

"ओसवाखिम"

ओसवाखिम नाम की एक और संस्था है। इस संस्था के ऊपर देश की रक्षा का भार निर्भर है। हवाई और रसायनिक लड़ाइयों में काम आने वाले शस्त्रों का अन्वेषण करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। इस संस्था में कारखानों के मजदूर और स्कूलों के विद्यार्थी ही बड़ी तादाद में हैं। इस दल की संख्या करीब ५ लाख है। इस तरह कुल मिलाकर सोवियट रूस की फौजी ताकत २ करोड़ से भी अधिक है। इस समय फौजी कारखानों में तथा विभिन्न फैक्टरियों में ६ करोड़ मजदूर काम करते हैं। फौजी कला में सोवियट स्त्रियाँ भी अच्छा स्थान प्राप्त कर रही हैं, और वे युद्ध के समय पुरुषों के बराबर ही कंधे से कंधा लगाकर काम करने को तैयार हैं। आज का रूस संसार में सबसे अधिक फौजी शक्ति का प्रदर्शन कर रहा है। इसका श्रेय लेनिन के बाद स्टालिन को ही प्राप्त है।

टालसटाय और उसके अमर सिद्धांत

वर्तमान समय का सबसे भयंकर और बड़ा युद्ध वही है; जो ज्ञान और अज्ञान, प्रकाश और अन्धकार, सत्य और असत्य के बीच हो रहा है ! इसके लिये ही तोप के गोलों की आवश्यक्ता होती है। वह मनुष्य, जो राजा और सैनिक के रूप में होता है, अथवा जो सर्वप्रधान नेता कहलाता है, अपने सिद्धान्तों को अमर बनाने के लिये वह जो कुछ कर गुजरता है, उसी पर संसार की शांति और अशांति निर्भर रहती है ! सच्चे राजनैतिक और धार्मिक सिद्धान्तों का अनुसरण करने से जीवन की, समाज की, देश की, कुटुम्ब तथा अपने आप की समस्त गुत्थियाँ सरलतया सुलझ जाती हैं।

मनुष्यमात्र का उद्धार इसी में है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन का उद्देश्य "सेवाधर्म" बनाकर करे। यही जीवन सर्वोत्तम कहलाता है और इसी से राष्ट्र और धर्म का निर्माण हो सक्ता है। महात्मा टाल्स्टाय इसी उद्देश्य को लेकर संसार की पवित्र भूमि में अवतीर्ण हुए।

टालसटाय का जन्म सन् १८२८ ई० में २८ अगस्त को रूस के टूला नामक नगर के पास यासनाया पोलियाना नाम के गाँव में हुआ था। टालसटाय के माता पिता राजकुमारी मेरी और काउन्ट निकोलस एक शाही परिवार के व्यक्ति थे। टालसटाय की ९ वर्ष की आयु के भीतर ही माता-पिता दोनों का स्वर्गवास हो गया। टालसटाय के दो बड़े भाई और थे, एक का नाम सिजीयम और दूसरे का नाम डिमेट्री था, पर इन दोनों भाइयों की अपेक्षा टालसटाय की मनोवृत्ति बचपन से ही साधु स्वभाव की थी। उन्हें प्रकृति के एकांतवास में रहना अधिक पसन्द था। उन्हें खेलकूद बिलकुल ही पसन्द न था। मित्रमण्डली के साथ भी अधिक नहीं रहते थे। एकांत में घूमना बैठना और वहीं पर पढ़ने लिखने का अधिक शौक था। टालसटाय का बचपन चंचलता से भरा हुआ था। उनका शरीर सुन्दर और बलिष्ट था। उन्हें अपनी सुन्दरता पर अधिक गर्व न था। बचपन में उन्हें तर्क करने की आदत लग गयी थी। जिस वस्तु को वे देखते उसपर खूब तर्क से विचार करते थे। परिणाम यह हुआ कि धीरे धीरे उनमें तार्किक शक्तियों का प्रभाव बढ़ चला, जिससे उनके हृदय में नास्तिक भावों का उदय होने लगा। अपनी प्रारम्भिक और आध्यात्मिक शिक्षा समाप्त करने के लिये वे काज़ान के

विश्व-विद्यालय में भरती हो गई। पहिले-पहल इन्होंने कानूनों के कई कोर्स पढ़ डाले। पढ़ने-लिखने में टाल्सटाय सर्वप्रथम परिश्रमी युवक थे। उनके सुन्दर और सुडौल शरीर में विद्याओं की आशाएँ फूटी पड़ती थीं। वे जिस बात को सुन लेते, वर्षों उनको याद रहती थीं। कानूनों के कोर्सों में उनका मन नहीं लगा। उस समय की अध्ययन-प्रणाली को वे एक निकम्मी और कमज़ोर बना देने वाली संस्था समझते थे।

काज़ान शहर एक सुन्दर और शौकीन शहर था। १९ वीं सदी में इन शहरों की रौनक बहुत बढ़ी-चढी थी। नाचरंग, थियेटर और आमोद-प्रमोद के लिये काज़ान शहर प्रसिद्ध था। यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी भी पढ़ने लिखने की अपेक्षा इन खेल तमाशों में काफी भाग लिया करते थे। उन दिनों विद्यालयों में वही विद्यार्थी भरती हुआ करते थे, जो सबसे अधिक आमोद-प्रमोदी और पैसे वाले होते थे। टाल्सटाय भी अपना अधिकांश समय खेल-कूद और नाच-रंग में गुजारते थे। सन् १८४३ ई० में टाल्सटाय अपने बड़े भाई निकोलस के साथ घर लौट आये। पढ़ना-लिखना उन्होंने व्यर्थ ही समझा। उनकी आत्मा पर एक दूसरी ही धुन सवार थी। वे अपने देश में मजदूरों और किसानों पर होने वाले भयंकर अत्याचारों को नहीं देख सक्ते थे। वे इन्हीं चिन्ताओं में मग्न रहते थे, कि इस भयंकर प्रणाली के विरुद्ध आवाज़ किस तरह उठाई जावे।

उस समय रूस में गुलामी-प्रथा अधिक प्रचलित थी। अड़तालीस लाख किसान दासता की बेड़ी में जकड़े हुए थे। रात दिन ये किसान

अपने मालिकों के खेतों में काम करते थे, और उनकी कमाई से जमीं-दार और साहूकार मौज़ करते थे। जमीनों के बिक जाने पर ये गुलाम भी उन्हीं जमीनों के साथ बेच दिये जाते थे। उनके स्वामियों को यह अधिकार था, कि वे उन दासों को मनमानी कीमत पर बेच दें। एक गुलाम के परिवार को अलग-अलग बेचने की भीषण प्रथा थी। स्त्री कहीं बिकती थी, तो पुरुष कहीं बेच दिया जाता था। छोटे-छोटे बच्चे उनकी गोदों से छीनकर बाज़ारों में सरेआम नीलाम कर दिये जाते थे। इस निर्दयता को टाल्सटाय की आत्मा सहन करने में असमर्थ थी। गुलामी-प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाना एक प्रबल राजद्रोह समझा जाता था। ऐसे समय में टाल्सटाय कर ही क्या सकते थे। उन्होंने एक छोटी सी पुस्तक लिखी, जिसका नाम था 'जमींदारों का प्रातःकाल"—इस पुस्तक का प्रभाव नृशंस और अत्याचारी साम्राज्यवादियों पर कुछ भी न पड़ा। अतएव वे अपने नगर से सेंट पीटर्सबर्ग चले गए। वहाँ वे फिर ससार के आनन्द लूटने लगे। अपनी जवानी के दिन वे बेतहाशा नाच रंग और खेल कूदों में बहाने लगे।

टालसटाय अभी तक अपने एक निश्चित् सिद्धांत को स्थिर नहीं कर सके थे। उनका चित्त भ्रमात्मक हो रहा था। कभी वे सेना में भरती होकर क्रांति करने की योजना तैयार करते, कभी कानून पास करने का विचार करते, और कभी आनन्दमय जीवन व्यतीत करने की बात सोचते थे। विचारों की गहरी तरंगों में उनका जीवन बहा जा रहा था। एकाएक उनके भाई निकोलस सेना में भरती होकर रूस के पहाड़ी और जंगली प्रान्त काकेशश में चले गये। अप्रैल सन् १८५१ ई० में वे छुट्टी लेकर घर

आए। उन्होंने देखा कि टालसटाय का जीवन नैतिक-पतन की ओर तेजी से बढ़ रहा है, और अगर वे इस पद-भ्रष्ट मार्ग से शीघ्र ही अलग न किये गए, तो वे उस प्रांत में एक अत्यन्त आचार-भ्रष्ट व्यक्ति सिद्ध होंगे। इसका अनुभव करके निकोलस टालस्टाय को अपने साथ छुट्टी पूरी होने पर काकेशश ले गए।

कुछ दिनों भाई के साथ रहने पर टालसटाय के हृदय में भी सेना में भरती होने की प्रबल आकाँक्षा हो उठी। वे टिफलिस के सैनिक विद्यालय में भरती हुये। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर उन्हें तोपखाने में स्थान दिया गया। अपने इस सैनिक जीवन में उन्होंने एक दूसरी पुस्तक "बाल्यावस्था" नामकी लिख डाली। उस रचना को उन्होंने पीट्रोग्रेड के एक संपादक को दे दी। इस रचना के छपने के बाद उन्होंने सबसे पहिला सिद्धान्त जो स्थिर किया वह था साहित्य की सेवा करना। काकेशश में बहुत दिन तक वे नहीं रह सके। सैनिक जीवन से उन्हे एकाएक घृणा हो गई। उन्होंने शीघ्र ही अपना त्यागपत्र फौजी आफीसर के पास भेज दिया। त्यागपत्र अभी स्वीकृत भी न हुआ था कि "क्रिमियन-युद्ध" छिड़ गया। यह रूस का महाभयंकर युद्ध था। टालसटाय ने इस युद्ध में जाने की इच्छा प्रकट की और अपना त्यागपत्र वापस मँगा लिया। टालसटाय ने अपनी अदूरदर्शिता और असीम वीरता से एक फौजी अफसर का पद प्राप्त कर लिया। वे सिवास्टोपोल के प्रसिद्ध दुर्ग में रख दिए गये। इस युद्ध में अंग्रेज और फ्रांसीसियों से लोहा लिया जा रहा था। टालसटाय इस भीषण युद्ध में बड़ी वीरता के साथ काम कर रहे थे, और साथ ही मनुष्यजीवन का अर्थ भी

समझ रहे थे। वे देख रहे थे, सैकड़ों मनुष्य प्रति-दिन मरते हैं और हज़ारों घायल होकर कराहते हैं। ये निर्दोष मनुष्य क्यों मारे जाते हैं, कौन इन्हें मरवाता है और इस तरह मरने का अर्थ क्या है? इन भीषण समस्याओं पर टालसटाय के हृदय में एक गम्भीर उथल-पुथल मच रही थी। एक मनुष्य की आज्ञा पर हज़ारों नहीं लाखों सिपाही मरते हैं। उनके मरने से उन सिपाहियों को क्या लाभ होता है, वे यह नहीं समझ पाये। वह आदमी जो बादशाह के रूप में होता है, जिसे "सरकार" के नाम से जनता पुकारती है, वह ऐसा क्यों करता है? फौज़ रखने से और बड़े २ तोपखानों से मनुष्यमात्र का क्या लाभ होता है? मनुष्यत्व के सिद्धान्तों की रक्षा के लिये तो "शांति फौज़" का रखना आवश्यक है, जिससे राष्ट्र-जीवन और मनुष्य-समुदाय की रक्षा सहज़ ही में हो सके। युद्ध के भयानक दृश्यों ने टालसटाय का हृदय हिला दिया। अभी तक उन्होंने कोई ऐसा हृदय-विदारक दृश्य देखा ही नहीं था। अब उन्होंने एक तीसरी पुस्तक लिखी जिसका नाम था, "शांति और युद्ध"। इसमें युद्ध की भयंकरता और स्वार्थ के नर-पिशाचता का एक भीषण और नग्न-चित्र खींचकर संसार के आगे रख दिया। अगर टालसटाय ने इस युद्ध में भाग न लिया होता, तो संभव है वे आज शांति के देवता के नाम से विभूषित न होते।

(२)

सन् १८५५ ई० में सिवास्टोपोल का पतन हो गया। रूसी सेना बुरी तरह हार गई। टालसटाय अंतिम घटनाओं का और पतन का संदेश

लेकर सेंट पीटर्सबर्ग लौट आए। सैनिक जीवन से अंतिम बिदा ले ली। सेना से बिदाई लेने पर उनका विचार विदेशों में भ्रमण करने का हुआ। उस समय रूस ही क्या, संसार में आजकल की तरह रेलें, मोटर और हवाई जहाज नहीं थे। रेलों का धीरे-धीरे विकास हो रहा था। मोटरें भी इतनी अधिक संख्या में नहीं थीं, जितनी कि आजकल हैं। उस समय एक मोटर का रखनेवाला व्यक्ति, संसार का एक महान् धनाढ्य पुरुष समझा जाता था। टाल्सटाय कहीं रेल से और कहीं घोड़ागाड़ी से यात्रा करते हुए पेरिस पहुँच गए। पेरिस पहुँचने पर इन्होंने नवीन सभ्यता के दर्शन किए। इन्होंने देखा कि एक आदमी को गिलोटिन नामक यंत्र से फाँसी की सज़ा दी जा रही है। इस यंत्र से मनुष्य बड़ी बेदर्दी के साथ तड़पकर मरता है। जिस तरह कागज़ काटने की मशीन कागज काटती है, उसी तरह इस मशीन के नीचे आदमी का सर फँसा दिया जाता है और ऊपर से छूरी गिरा दी जाती है, जिससे सिर कट कर धड़ से अलग गिर पड़ता है। टालसटाय ने इस भयानक मृत्यु को पहिली बार देखा। पेरिस के इस अशांत-जीवन में उनका चित्त नहीं लगा, वे स्विड्जरलैण्ड चले गए। स्विड्जरलैण्ड यूरोप का एक सौंदर्य-प्रधान नगर है। यूरोप से बाहर के लोग भी इस नगर को देखने आते हैं। कुछ दिन स्विड्जरलैण्ड रहकर टाल्स्टाय जर्मनी भ्रमण करते हुए अपने देश को लौट आए! इसके बाद वे अपनी जमींदारी की देखभाल करने लगे। साथ ही वे साहित्य-क्षेत्र में भी उतर पड़े! मास्को साहित्य परिषद् के सदस्य भी हो गए। तभी से रूसी साहित्य में नवजीवन का प्रवेश हुआ। रूस ने इस नवीन लेखक का अच्छा स्वागत किया।

जिस समय टालसटाय संसार की दौड़ में आगे बढ़ रहे थे, उस समय उनके भाई निकोलस का देहान्त हो गया। भाई के मृत्यु से वे चिन्तित हो गए। अब उन्हें दूसरी धुन सवार हुई, वे मृत्यु का रहस्य समझने की चेष्टा करने लगे। तभी से जीवन और मृत्यु उनका एक खास विषय हो गया। इसी समय एक और नवीन घटना घटी। रूस-सम्राट ज़ार निकोलस प्रथम की मृत्यु हो गई और द्वितीय एलेकजेण्डर ज़ार नियुक्त हुए। उस समय क्रीमियन युद्ध से रूस की आर्थिक और राजनैतिक दशा अत्यन्त खराब हो गई। जनता धीरे-धीरे सुधारों की माँग करने लगी। प्रेस की रुकावटें बहुत ही कड़ी थीं। द्वितीय एलेकजेण्डर ने इस रुकावट को बहुत कुछ हटा दिया। दो साल के ही भीतर मास्को से प्रायः ७० पत्र निकलने लगे। इन पत्रों की सरगर्मी से रूस में एक नवीन विचारधाराओं की लहर दौड़ पड़ी।

एलेकजेण्डर ज़ार ने किसानों को कुछ स्वतंत्रताएँ दे दीं, जिससे गुलामी की ज़ोरदार प्रथा उखड़ गई। इस नए कानून के अनुसार प्रत्येक शहरों में किसानों और जमींदारों के समझौते-बोर्ड मुकर्रर किए गए। ऐसे ही बोर्ड में टालसटाय भी काम करते थे। टालसटाय के आगे जब २ किसानों और जमींदारों के झगड़े आये तब २ आप किसानों का ही पक्ष लेते थे। जमींदार लोग किसानों को दी हुई स्वतन्त्रता के प्रबल विरोधी तो थे ही, दूसरे वे इस नए कानून को पुनः रद्द कराना चाहते थे। टालसटाय के इस पक्षपातपूर्ण कार्य से वे इनके प्रबल शत्रु हो गए। गुप्त और प्रकट रूप से—सरकार के पास अनेकों शिकायतें पहुँचने लगीं। परिणाम यह हुआ कि टालसटाय को इस समझौता-बोर्ड से शीघ्र ही त्यागपत्र देना पड़ा।

इस कार्य से छुट्टी पाकर टालसटाय शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों में लग गए। उन्होंने अपने गाँव में एक नवीन पाठशाला खोली। इस शाला का कार्यक्रम उन्होंने यूरोप की भिन्न २ शिक्षा-प्रणालियों के आधार पर जारी किया। इनके साथ एक जर्मन अध्यापक भी था, जिसे वे अपने साथ यूरोप भ्रमण के समय वहाँ साथ ले आए थे। इस आदर्श प्रारम्भिक-शिक्षा का पाठ्यक्रम रूस की तमाम पाठशालाओं से भिन्न था। इसमें प्रारम्भ से ही स्वतंत्र-नैतिक-जीवन बनाने की शिक्षा दी जाती थी। अध्यापकों को इस बात की सख्त ताकीद थी कि वे किसी तरह की ताड़ना बच्चों को न दें। अध्यापक सिर्फ पथ-प्रदर्शक ही रहकर बालकों को स्वतंत्र-रूप से हृदयङ्गम और मननशक्ति का विकास करावें।

टालसटाय का विश्वास था, कि बालक अपनी इच्छा से जो सीख सक्ता है, वह सदा उसके हित में अच्छी होती है। और जो ताड़ना देकर सिखाई जाती है, वह सदा टिकाऊ नहीं होती, ऐसी शिक्षा किराए की शिक्षा कहलाती है। इससे बालकों के नैतिक-जीवन पर बिल्कुल प्रभाव नहीं पड़ता। बच्चों में "आदर्श" स्थापित करना उनकी इच्छा पर ही निर्भर है। बालकों के हृदय में प्रतिदिन हजारों इच्छाएँ उठती हैं। अगर वही इच्छाएँ केंद्रीभूत कर उन्हीं की तरफ़ बालकों की शक्ति को लगाया जावे तो वे अपने जीवन को शीघ्र ही सफलीभूत बना सक्ते हैं। मान लीजिए, एक बालक की इच्छा है कि मैं एक लेखक बनकर पुस्तक लिखूँ। अध्यापक को अगर उसकी मनोवृत्ति का पता लग जावे तो बालक के सामने वह ऐसा ही सुन्दर शिक्षाक्रम रखे जिससे बालक को अपनी इच्छापूर्ति में पूर्ण सहयोग मिले। टालसटाय का यही सिद्धान्त

था। यह सिद्धान्त बालकों के लिये आदर्श और नैतिक-जीवन व्यतीत करने का सबसे उत्तम साधन है। अगर टालसटाय इस शिक्षाप्रणाली में सफल हो जाते तो रूस की शीघ्र ही कायापलट हो जाती।

परन्तु शोक है, यह शिक्षाक्रम सरकार की आँखों में खटक गया, वह एक तरह से सचेत हो गई। उसने शीघ्र ही समझ लिया कि यह बीज जो आज बोया जा रहा है, किसी दिन वर्तमान सरकार को उखाड़ कर फेंक देगी, और आखिर हुआ भी वैसाही। इस संस्था के स्थापन के बाद ही वे बीमार पड़ गये। उन्हें हवा बदलने के लिए कहीं दूसरे स्थान पर जाना पड़ा, जिससे शाला को बंद कर देनी पड़ी। इसी समय पुलिस ने टालसटाय को विद्रोही समझ कर उनके गाँव की तलाशी ली, पर कोई संदेह-जनक वस्तु उसे न मिल सकी। इस तलाशी से गाँव के लोग भयभीत हो गए, और उन्होंने टालसटाय की शाला को सहायता देना बंद कर दिया। परन्तु इस शाला में कुछ ऐसे रत्न पैदा हो गए थे, जिन्होंने रूसी भाषा में सर्वोत्तम उपन्यास लिख डाले।

सन् १८६२ ईस्वी में टालसटाय ने ३८ वर्ष की आयु में विवाह किया। आपकी पत्नी एक आदर्श परिवार की गुणवत्ती कन्या थीं। विवाह के बाद दोनों पति-पत्नी अपने गाँव में रहकर साहित्य-सेवा करने लगे। टालसटाय ने अपना संसार प्रसिद्ध उपन्यास "एना कोरनिन"—इसी समय लिखा। "एना कोरनिन" टालसटाय की लेखनी का अद्भुत चमत्कार है। यह उपन्यास संसार भर के उपन्यासों में सर्वोत्तम उपन्यास माना जाता है। इस उपन्यास से टालसटाय की कल्पना और अध्ययन शक्ति का अभूतपूर्व परिचय मिलता है। लेखनकला का चमत्कार

और वाक्यरचना की सुन्दरता इसमें कूट-कूट कर भर दी है। इस उपन्यास ने टाल्सटाय को संसार के सामने उपस्थित कर दिया। उपन्यास में कल्पना का एक चित्र खींचा गया था, जिससे उनकी विरोधी जनता भी प्रेमभाव से उन्हें देखने लगी थी। उन्होंने जिस सुंदर भावों का वर्णन इस पुस्तक में किया था, इससे कोई यह नहीं कह सक्ता था, कि वे विद्रोही थे। पर इतना अवश्य था कि जिन भावनाओं को वे अपने साहित्य में स्थान दे रहे थे, वह 'परिवर्तन" था। वे वर्तमान युग में संशोधन करके भीषण परिवर्तन की ओर बढ़ रहे थे। इसीलिये वे सरकार की आँखों में कांटा बन गए।

एक तरफ टाल्सटाय अपने साहित्यक-जीवन का विकास कर रहे थे, तो दूसरी तरफ़ रूस की राजनैतिक दशा अत्यंत शोचनीय हो रही थी। सन् १८८१ की ३ मार्च को एलेक्जेंडर ज़ार की हत्या कर डाली गई। इस घटना से रूस में सनसनी फैल गई। इस हत्या से टाल्सटाय के हृदय पर एक धार्मिक प्रभाव पड़ा। वे सोचने लगे कि षड्यन्त्र-कारियों ने ज़ार की हत्या करके इसामसीह के पवित्र उपदेशों को भुला दिया है। तृतीय एलेकजेण्डर भी षडयन्त्रकारियों का बध और दमन करके मसीह के पवित्र उपदेशों के विरुद्ध कार्य कर रहे हैं। उसी समय उन्होंने नवीन ज़ार तृतीय को एक पत्र भेजा, जिसमें बड़े ही सरल और नम्र शब्दों में उनके इस अपवित्र, अधार्मिक और अराजनैतिक कार्यों का विरोध किया गया था। पर ज़ार ने इस पत्र का कुछ भी उत्तर न देकर अपराधियों को फाँसी पर लटका दिया। इसी समय टाल्सटाय मास्को चले गए। मास्को मज़दूरों और किसानों का केन्द्र था।

वहाँ उन्होंने देखा कि, किसानों और मज़दूरों की हालत बहुत ही खराब है। २४ घंटे कार्य करने पर एक दिन भी उन्हें भरपेट भोजन नहीं मिलता। रात दिन उनपर पशुओं की तरह भयंकर जुल्म होते रहते हैं। सैकड़ों मज़दूर और किसान प्रतिदिन भूखों रहते हैं और कितने आत्म-हत्याओं से मर जाते हैं।

बिके हुए गुलामों की यह दशा थी कि जिसके लिखने में कलम काँप उठती है। एक किसान प्रातःकाल ७ बजे कुछ रोटियाँ बाँधकर खेत पर पहुँचता है, और रात ८ बजे काम करके आता है। ८ बजे उसे कुछ अनाज के दाने अपने स्वामी से मिलते हैं; जिन्हें पीसकर वह रात्रि में ११—अथवा १२ बजे रोटी बना खाकर सो रहता है। खेत पर परिश्रम करते हुए अगर वह बीमार हो जाता है, तो वहीं उसको कड़ी मार खानी पड़ती है और इस मार में उसका प्राणान्त भी हो जाता है। अनेकों अभागे रोज मरते थे। जमींदार लोग ऐसे कृत्यों को एक मनो-रंजन की सामग्री समझते थे। अमेरिका में इससे भी बढ़कर कुकृत्य होते थे। किसी त्यौहार के दिन एक गुलाम पकड़कर लाया जाता था; उसे आग में जलाकर लोग आनन्द मनाते थे। ऐसे सैकड़ों गुलामों का कत्लेआम, धनी जमींदार और साहुकारों का एक साधारण खिलवाड़ होता था। मास्को में ये अत्याचार निरन्तर हुआ करते थे! टाल्सटाय का हृदय गरीबों और किसानों के हृदय-विदारक कष्ट को देखकर बहुत दुःखी हो गया। इसी समय रूस की मर्दुमशुमारी हो रही थी। टाल्सटाय ने गरीबों के प्रान्त में मर्दुमशुमारी करने की आज्ञा सरकार से प्राप्त करली। उन्होंने नगर के उस भाग में कार्य करना शुरू कर

दिया, जहाँ गरीब मजदूर और किसान रहते थे। उन्होंने देखा एक ओर वे मनुष्य रहते हैं जो रात दिन मजों में मस्त रहते हैं; और दूसरी ओर वे मनुष्य रहते हैं जो भूख से तड़फ-तड़फ कर अपने प्राण दे रहे हैं। इस अनुभव से उन्होंने एक सर्वश्रेष्ठ पुस्तक लिखी; जिसका नाम था—"तब हम क्या करेंगे"—(*What shall we do then*) इसमें उन्होंने दरिद्रों का एक रोमाञ्चकारी चित्र खींचा। इसी समय से उन्होंने साहित्य-सेवा छोड़कर गरीबों में काम करना आरम्भ कर दिया। टाल्सटाय का मत था कि इन सब बुराईयों की जड़ रुपया ही है; जो दूसरों पर जुल्म कराता है!—वे कहते हैं—

"अपने किए हुए पापों पर पश्चात्ताप कर उन्हें धो डालो, अपने जीवन का नवीन संगठन करो। अपने धन में से गरीबों को कुछ दो या न दो, परन्तु उनके कष्टमय जीवन में भाग अवश्य लो।" इसी तरह उन्होंने अपना जीवन बिताना आरम्भ किया। मास्को से वे अपने नगर पोलियाना लौट आए। घर जाकर उन्होंने गरीबों के कष्टमय जीवन पर सुन्दर-सुन्दर कहानियाँ लिखना आरम्भ किया। ये कहानियाँ बड़ी ही सरल भाषा में लिखी जाती थीं। ये इतनी करुणा-जनक होती थीं कि रूस के बाहर प्रदेशों में भी खूब बिकने लगीं, और लोग बड़े चाव से पढ़ने लगे। गरीबों की सेवा के साथ-साथ उन्होंने साहित्य-सेवा को नहीं छोड़ा। वे गरीबों के साथ लकड़ी काटते, काटते-काटते जब थक जाते, तो कहानी लिखने बैठ जाते थे। टाल्सटाय अपने पहिनने का जूता स्वयं बनाते थे। अपना सामान स्वयं लेकर चलते। कभी किसी मजदूर को उन्होंने अपने काम के लिये नहीं किया। पोटली

कन्धे पर लाद और बिस्तर लटका कर यात्रा किया करते थे। गाँवों से वे लकड़ी काटकर लाते और शहरों में गरीब लोगों को बाँट दिया करते थे। एक रूसी राजपरिवार के महान् व्यक्ति टालसटाय, अपना जीवन सदा गरीबी में व्यतीत करने लगे।

रूसी सरकार की आँखों में टाल्सटाय और उनका साहित्य प्रबल विद्रोही समझा जाने लगा। सरकार ने उनकी पुस्तकों का छपना और बिकना दोनों बन्द कर दिया। परन्तु विदेशों में उनकी पुस्तकें धड़ाधड़ बिकती थीं। जिनेवा, लंदन, और पेरिस आदि नगरों में टालसटाय के ग्रन्थों ने खूब अड्डा जमा लिया। तमाम देशों की भाषाओं में उनके अनुवाद होने लगे और संसार के साहित्य में उन्होंने अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया। यूरोप के पत्रों में टाल्सटाय की जीवनी प्रकाशित होनेपर लोगों की लालसा, टालसटाय को देखने की बढ़ने लगी। विदेशों से आकर लोग टालसटाय के दर्शन करने लगे। कुछ दिन में रूस के ज़ार भी उनको एक प्रतिभाशाली महान् व्यक्ति समझने लगे। सरकार की तरफ़ से उनके पीछे खुफिया पुलिस भी लगा दी गई। उनकी पुस्तकों को बेचने वालों को सज़ाएँ मिलने लगीं, परन्तु सरकार स्वयं टालसटाय से कुछ न बोलती थी। एक तरफ़ टालसटाय का कार्य-क्रम देश में प्रचारित हो रहा था, तो दूसरी तरफ़ नवयुवकों का एक विशाल समुदाय सामाजिक सुधारों की ओर झुक पड़ा। देश के समस्त नवयुवक समुदाय ने टालसटाय को अपना नेता चुना और उनकी आधीनता में वे हृदय से कार्य करने लगे। कितने ही धनाढ्य घरानों के नवयुवक टालसटाय के साथ हो गए। लोगों ने सेना में भरती होते

समय राज-भक्ति की शपथ लेने से इन्कार कर दिया। इसी समय से "निष्क्रिय प्रतिरोध" याने सत्याग्रह का श्रीगणेश हुआ।

टालसटाय-पथ के अनुगामी

इसी पथ का अवलम्बन महात्मा गांधी ने किया। सबसे पहिले दक्षिण आफ्रिका में महात्मा जी ने "निष्क्रिय प्रतिरोध" का अस्त्र फेंका, जिसमें उन्होंने अपूर्व सफलता प्राप्त की। दक्षिण आफ्रिका की सरकार इस अस्त्र के आगे झुक गई, और भारतवासियों को स्वतन्त्र अधिकार देने पड़े। इस महान् अस्त्र के प्रयोग में महात्मा गांधी को जीवन भर कठोर यातनाओं का सामना करना पड़ा। उनका आधा जीवन जेलों की चहारदीवारी के भीतर बीत गया। दक्षिण आफ्रिका के गोरों ने काले भारतवासियों के प्रति इतने कठोर कानून बना डाले थे कि भारत-वासी वहाँ जो कुछ भी कमाते उसे गोरों के हवाले करना पड़ता था। दासवृत्ति की प्रथा ने भारतवासियों को इस तरह जकड़ रखा था कि अनेकों भारतीय प्रतिदिन हंटरों और बूटों की ठोकरों से मारे जाते थे। महात्मा गांधी इस समय बम्बई में बैरिस्टर थे, उन्होंने परिस्थिति का अध्ययन किया और आफ्रिकन सरकार से लोहा लेने के लिये आफ्रिका पहुँच गए। वहाँ उन्होंने एक "टालसटाय फार्म" नाम की संस्था स्थापित की और आफ्रिकन-इंडियन नेशनल कांग्रेस को जन्म देकर युद्धक्षेत्र में उतर पड़े। आफ्रिकन सरकार ने महात्मा गांधी के उठाये हुए आन्दोलन को कुचलना चाहा। एक तरफ़ जनरल स्मट्स के हज़ारों गोरों का विशाल समुदाय था, तो दूसरी तरफ़ महात्मा गांधी अपने "प्रतिरोध" अस्त्र के साथ खड़े थे। बरसों लड़ाई लड़ने

के बाद सरकार ने महात्मा गांधी की शर्तें स्वीकार कीं और भारत-वासियों को स्वतन्त्ररूप से जीवन व्यतीत करने के लिये नवीन कानून बनाये। केपकोलोनी और नेटाल में अब भी महात्मा गांधी की स्थापित अनेकों संस्थाएँ हैं। टाल्सटाय के सिद्धान्तों की यह भी एक महान् विजय थी।

भारतवर्ष में नवीन शिक्षा-क्रम (विद्या-मन्दिर-स्कीम) की योजना भी टाल्सटाय का महान् राष्ट्रीय सिद्धान्त है। आफ्रिका में जिस तरह टाल्सटाय-फार्म ने अपूर्व चमत्कारिक शक्ति का प्रदर्शन किया, उसी तरह भारतवर्ष में यह नवीन शिक्षा-क्रम की योजना भी किसानों और मज़दूरों में आर्थिक और राजनैतिक जाग्रति का एक विशाल अनुभव है। यह स्कीम भारत में कार्य-रूप में परिणित हो चुकी है। कहने की आवश्यक्ता नहीं कि टाल्सटाय के अमर सिद्धान्त ही विद्या-मन्दिर स्कीम की रचना है।

रूस की आर्थिक दशा और टाल्सटाय

रूस व्यापारिक देश कभी नहीं रहा। पहाड़ी स्थान होने से यहाँ कच्चा माल बहुत ही कम उत्पन्न होता है। यहाँ का मुख्य व्यवसाय खेती है। रूस की करोड़ों जनता खेती ही पर निर्भर रहती है। परन्तु आज वह समय नहीं रहा। सोवियट सरकार के विधाता स्टालिन और लेनिन ने रूस की कायापलट कर दी। आज वहाँ भूखे मरनेवालों की संख्या बहुत ही कम है। कल कारखानों और बेकारों की उन्नति के लिये सोवियट-रूस ने करोड़ों रुपयों के व्यवसाय खोल रखे हैं। सन् १८९१ ईस्वी में पानी नहीं बरसा। सारे देश में अकाल का दौरा आरम्भ हो

गया। रेयाज़ा प्रान्त में अकाल ने भीषण रूप धारण कर लिया। टालस-टाय इस प्रान्त में अपनी दो कन्याओं के साथ किसानों की सहायता करने के लिये गए। उस समय उनके पास सिर्फ ७५०)रु० ही थे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने भूख से तड़फती हुई जनता को भोजन बाँटना शुरू किया। इस महान् सेवा की चर्चा देश के चारों कोनों में फैल गई। लोग टालसटाय को अपने युग का एक महान् देवता समझने लगे।

श्रीमती टालसटाय ने पत्रों में एक अपील प्रकाशित कर देश की धनाढ्य जनता का ध्यान इस ओर खींचा। फलस्वरूप इस अपील के द्वारा अच्छी-अच्छी रकमें टालसटाय के पास आने लगीं, जिससे टालस-टाय का समस्त परिवार गरीबों की सेवा में लग गया। अकाल पीड़ित लोगों को इस महान् सेवा से बहुत लाभ पहुँचा। इसी समय उन्होंने "*The Kingdom of God is within you*" "स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे हृदय के भीतर है" नामक एक सर्वोत्तम ग्रंथ लिख-कर साहित्य-क्षेत्र में एक नवीन क्रांति की लहर उत्पन्न कर दी। रूस ने ही नहीं किन्तु समस्त संसार ने इस नवीन रचना का अपूर्व स्वागत किया। इस पुस्तक में रूसी-साम्राज्यवाद की कड़ी आलोचना की गई थी। राजनैतिक क्षेत्र में यह एक बम था, साम्यवाद की एक अनोखी चिनगारी थी। रूसी सरकार ने इस पुस्तक को राजद्रोह फैलाने वाली समझ कर जब्त करली और उसका प्रचार रोक दिया लेकिन वे खूनी, क्रांतिकारी अथवा राजद्रोही नहीं थे; वे समाज में प्रेम और दया के भाव उत्पन्न करने वाले महान् व्यक्ति थे। वे जबरदस्ती शासन-विधान के नियमों को जनता पर लादने के पक्षपाती नहीं थे।

(३)

अकाल की भीषणता के बाद इन्होंने एक तीसरी पुस्तक लिखी जिसका नाम था—"रिजरेक्शन"। इस पुस्तक में साम्राज्यवाद और ईसाई धर्म की आलोचना और व्याख्या थी। इन्होंने लिखा था—ईसाई धर्मानुसार किसी भी एक व्यक्ति को शासन का अधिकार नहीं। ऐसी सरकार जिसमें दया-धर्म और सत्य के विशेषण नहीं है, कभी भी सरकार नहीं हो सकती। ईसाई धर्म मनुष्य-मात्र का एक स्वार्थमय जीवन है, जिसके सहारे जनता पर अमानुषिक अत्याचार सहज ही में किए जा सकते हैं। इस पुस्तक से पादरी-समाज में भीषण खलबली मच गई। पादरियों ने एक व्यवस्थापत्र निकाल कर टाल्सटाय को धर्मद्रोही और नास्तिक की पदवी दे डाली। जिस दिन मास्को शहर में यह घोषणापत्र सुनाया गया, उस दिन खूब दंगे हुए। विद्यार्थियों ने घोषणा करनेवालों की खूब खबर ली और घोषणापत्र फाड़कर फेंक दिए। इन भयानक दंगों में हजारों विद्यार्थियों और मजदूरों ने भाग लिया। इस व्यवस्थापत्र से उल्टे इन्हें सैकड़ों सहानुभूतिपूर्ण पत्र और डेपूटेशन मिले। विद्यार्थियों ने इन्हें अपना तो गुरु ही बना लिया। इस घोषणा-पत्र का समाचार ज्यों-ज्यों फैलता गया त्यों-त्यों टाल्सटाय का प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता ही गया। इसका उत्तर इन्होंने एक छोटे से लेख में बड़ी ही सावधानी से दिया। आप कहते हैं—"मैं केवल यही प्रकाशित नहीं करना चाहता कि मैं ग्रीक चर्च को नहीं मानता वरन् मैं यह भी जाहिर करना चाहता हूँ कि मैं अपने को ईसाई कहने में भी संकोच करता हूँ, क्योंकि मुझे डर है कि कहीं इस नाम से सत्य बात न छिप

जावे। सत्य ही मुझे सबसे अधिक प्रिय है, और सत्य से मुझे कोई हटा नहीं सक्ता।"

टालसटाय की ८० वीं वर्षगाँठ बड़ी धूमधाम से मनाई गई। विरोधियों ने इस समय बड़े २ लेख लिखकर इनका विरोध किया—एक सूचना में लिखा गया कि टालसटाय नास्तिक है, उसका आदर करना महापाप है। हाँ आदर की दृष्टि से उसका स्वागत कर सकते हैं। बहुत से स्थानों पर टालसटाय की वर्षगाँठ नहीं मनाई गई, परन्तु कई स्थानों पर बड़ी धूमधाम से मनाई गई, यद्यपि टालसटाय ने स्वयं एक वक्तव्य निकाल कर सार्वजनिक सभाएँ करने की मनाही करदी थी। उस दिन संसार भर में टालसटाय का महान् आदर किया गया। समाचार पत्रों में बड़े-बड़े चित्र छापे गए। सारे देश ने अपने साहित्य-सेवी नेता का अपूर्व स्वागत किया।

टालसटाय ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में, एकांतवास करने का विचार किया। लेकिन उन्होंने एकांत जीवन व्यतीत करना भी एक पाप समझा। क्योंकि एकांत जीवन व्यतीत करने से परिवार के लिये एक मानसिक वेदना होगी, यही सोच-समझकर टालसटाय ने एकांतवास में रहना स्वीकार नहीं किया।

उन्होंने अपने अन्तिम दिनों में एक पत्र अपनी धर्मपत्नी को लिखा था—

प्रिय सोनिया!

मेरे जीवन और धार्मिक सिद्धान्तों का जो परस्पर संग्राम हो रहा है उससे मुझे अत्यंत वेदना हो रही है। मैं तुम लोगों से विदा होकर

अन्यत्र जाना चाहता हूँ, इसके कई कारण हैं। पहिला कारण तो यह है कि ज्यों-ज्यों मेरी अवस्था बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों मेरा जीवन अधिक कष्टकर होता आ रहा है। मेरी प्रबल इच्छा एकांत-सेवन करने की है। दूसरा कारण यह है कि लड़के अब वयस्क हो चुके हैं, इससे मेरा घर पर रहना आवश्यक नहीं। तीसरा कारण यह है कि जिस तरह ६० वर्ष की अवस्था में लोग एकांत सेवन करने जंगल को निकल जाते हैं, उसी तरह मैं भी जाना चाहता हूँ। अगर मैं प्रकटरूप से इस कार्य को करता हूँ, तो लोग मुझे ऐसा करने न देंगे। अतएव इससे तुम्हें कोई कष्ट हो तो क्षमा करना। तुमलोग प्रसन्नता-पूर्वक मुझे जाने की अनुमति दे दो।

तुम्हारा स्नेही
टाल्सटाय।

अपने विचारों को कार्यरूप में परिणित करने के लिये उन्होंने ता० १० नवम्बर सन् १९१० ईस्वी को घर छोड़ने का निश्चय किया। यात्रा करने का शीघ्र ही प्रबन्ध कर लिया गया। इसके बाद डाक्टर मैकोविट्सका को जगाया, और उनके साथ स्टेशन की ओर चल पड़े। इस समय टालसटाय का स्वास्थ्य बहुत खराब था। उन्हें रेलगाड़ी में सर्दी लग गई। यह सर्दी इतनी शीघ्र बढ़ी कि २० नवम्बर सन् १९१० को आस्टायोवो नाम के स्टेशन पर ही टाल्सटाय का स्वर्गवास हो गया।

साम्यवाद का महर्षि महात्मा कार्ल-मार्क्स

महात्मा कार्ल-मार्क्स १९ वीं सदी के सबसे बड़े मनुष्य गिने जाते हैं। संसार के सभी सभ्य देशों में उनके सिद्धान्तों की पूजा होती है। रूस तो उनका पुजारी ही है। उनके सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये अनेक समितियाँ स्थापित हैं। पिछली सदी, जोर-जुल्म और स्वेच्छाचारिता की सदी थी। उस समय संसार के राष्ट्र, पीड़ितावस्था में अपने दिन गुज़ार रहे थे। राजा-महाराजा और जमींदारों के नृसंश-अत्याचारों से, संसार की दीन-जनता काँप उठी थी। किसान और मजदूर धीरे-धीरे पीसे जा रहे थे। सिर्फ ज़ारशाही हुकूमत में ३० लाख से अधिक भिखमंगे थे, जो किसान और मजदूर ही थे। इनकी खेती-बारी और जमीनें जमींदारों ने हड़प ली थीं। धन सरकारी कोषों में चला गया

था। जर्मनी की भी यही दशा थी। प्रुशिया का राजा अपनी भयंकर क्रूरता के लिये प्रसिद्ध था। अत्याचारों की तो कोई सीमा ही नहीं थी। मजदूर और किसान जो अपने लिये पैदा करते थे, वह सभी तुरन्त छिन जाता था। एक नहीं सैकड़ों दीन बच्चे प्रति दिन अनाथ होकर गली-कूचों में मारे-मारे फिरते थे। सैकड़ों नहीं हजारों माता-पिता अपने नन्हें-नन्हें लालों को छोड़कर आत्म-हत्या कर बैठते थे। प्रकृति का यह एक नियम-सा है, कि जब संसार में उत्पीड़न-शक्ति अपना कार्य जोरों से करने लगती है, तभी एक-न-एक नवीन शक्ति उत्पन्न होकर उसे नष्ट कर देती है।

कार्ल-मार्क्स का जन्म ५ मई सन् १८१८ ई० को जर्मनी के ट्रवेस नगर में हुआ था। कार्ल जाति के यहूदी थे। पिता एक विद्वान वकील थे। बाद में इनके परिवार वालों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। कार्ल बचपन ही से द्रुतगामी और प्रगतिशील स्वभाव का युवक था। उसका हृदय इतना चंचल और दयावान था, कि वह किसी की दुःख पीड़ा को नहीं देख सक्ता था, और न सुन ही सक्ता था। उसका शिशु जीवन संसार में दया का जगमगाता सितारा था। सभी उसे होनहार बालक समझते थे। एक महापुरुष होने के जितने भी चिन्ह प्रकट होने चाहिये, वे सभी बचपन की अवस्था में प्रकट होने लगे थे। कार्ल का स्वभाव सुन्दर और सरल था। वह सदा ग़रीब लड़कों के साथ खेलता और उन्हीं के साथ रहता था। खेल खेल ही में कार्ल, उनकी दरिद्रावस्था का अध्ययन और अनुभव करता था। ज्यों २ कार्ल युवावस्था को प्राप्त होता गया, त्यों-त्यों उसे मानव-समाज के भेद

प्रकट होने लगे।

मार्क्स ने अपने युवाकाल में बोर्न के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में अध्ययन किया। वह शीघ्र ही दर्शन-विज्ञान और न्याय-शास्त्रों का तत्त्ववेत्ता हो गया। वह साहित्यिक ही नहीं एक महान् कवि भी हुआ। उसकी रचनाओं में उत्पीड़न,करुणा और प्रेम की अपूर्व संजीवनी थी। उसकी भाषा में अपूर्व जोश था। थोड़े ही दिनों में कार्ल एक सुलेखक से सम्पादक हुए और जर्मनी में नवीन युग का सन्देश देने लगे। सन् १८४३ ई० में उन्होंने जर्मन-वंश की एक उच्च घराने की कन्या श्रीमती जोना-बेरथा, जूली-जैनी-बोन नामक एक सुन्दरी से शादी कर ली। यह जर्मन कन्या बड़ी ही विदुषी, पतिव्रता और साम्यवादी सिद्धांतों को मानने वाली थी। पति-पत्नी दोनों का जीवन सुन्दर और आदर्श था। जैनी-बोन कार्ल को हर तरह की सहायता देने लगी। प्रुशिया में दिनोंदिन ज़ोर-जुल्म और अनाचारों की बढ़ती होने लगी। अमीर लोग रात-दिन चैन की बंशी बजाते। एक २ अमीर के यहाँ सैकड़ों गुलामों की संख्या मौजूद थी। ये गुलाम मुट्ठी भर अन्न और दो-दो रोटियों पर गुज़र करके इन अमीरों के लिये पैसे कमाते थे। खेती और कारखानों में काम करते थे।—

मानव-समाज में इतनी भीषणता! एक ओर धनियों का अट्टहास! दूसरी तरफ ग़रीबों का आर्तनाद, करुणाक्रन्दन, रुदन और रोटियों के लिये कोलाहल!—१९ वीं सदी में मज़दूर और किसान इतने गिर गए कि वे समझ ही नहीं सके कि हम मनुष्य हैं अथवा पशु? उन्हें राज-शक्ति से यह समझने का अवसर भी नहीं दिया जाता था कि वे

अपने को मनुष्य समझें। उन्हें अपनी बुरी हालत का ख्याल ही नहीं होता था। क्योंकि वे समझते थे, कि हम जिस दशा में पैदा हुए हैं, उसी दशा में अपना जीवन व्यतीत करना ही पड़ेगा। कार्ल ने दुःखी जनता को जगाने के लिये सन् १८४२ ई० में एक पत्र को जन्म दिया, जिसका नाम था—"रेहनिश-गजट"। पत्र का सम्पादन कार्ल बड़ी योग्यता से करते थे। पत्र का एकमात्र उद्देश था, वर्तमान लुटेरी और डाँकू सरकारों के तख्तों को उलट देना। यद्यपि पत्र नया होने से उसकी भाषा बड़ी ही सुन्दर और सरल थी तथापि उसके लेखों में जो भाव छिपे थे, वे बड़े जहरीले और 'सरकार' सरीखे जन्तु को मार डालने की अद्भुत शक्ति रखते थे। जर्मन सरकार का सिंहासन इनके लेखों से डोल गया, और सन् १८४३ ई० में यह पत्र बन्द कर दिया गया। पत्र के बन्द हो जाने से कार्ल जरा भी विचलित नहीं हुआ। उसने अपने सिद्धान्तों के मैनीफेस्टो निकालना शुरू किया। किसान और मजदूरों में उनके सिद्धान्तों का प्रचार आँधी की तरह होने लगा। कार्ल के सिद्धान्तों से लोग धीरे-धीरे जागने लगे। उनमें एक नवीन परिवर्तन के चिह्न दृष्टि-गोचर होने लगे। रेहनिश गजट के बन्द हो जाने पर कार्ल ने फ्रांस की यात्रा की। इस समय फ्रांस में भी साम्यवादी काफी जोर पकड़ रहे थे? स्वेच्छाचारी लुई फिलिफ घोर दमन कर रहा था। कार्ल ने फ्रांस पहुँचकर "वार-वार्टर्स" नाम का एक अखबार निकाला, जो साम्यवाद का कट्टर समर्थक और प्रचारक था। कार्ल के अखबार ने फ्रांस में और भी धूम मचा दी। उधर जर्मनी में भी साम्यवादियों का अधिक जोर बढ़ने लगा। फिलिप ने

जब देखा कि देश राष्ट्र—विप्लव की ओर बढ़ रहा है, तब उसने कार्ल को शीघ्र ही फ्रांस से निकल जाने की आज्ञा दी। कार्ल अपनी स्त्री और बच्चों को साथ लेकर ब्रुसेल्स भाग आया। यहाँ उसने मजदूरों और किसानों का अपूर्व संगठन किया। यहीं पर उसने (*The theory of the classes struggles*) नाम की पुस्तक लिखी।—

कार्ल का सिद्धांत है कि, संसार की चाहे कोई भी सरकार हो, वह अपने अधिकारों के लिये सत्य और न्याय के सिद्धान्तों पर नहीं रह सकती। सत्य और न्याय क्या है, वे इसकी रत्ती भर भी परवाह नहीं करते। उनके अधिकार और उनका स्वार्थ एक ऐसी व्यवस्था-प्रणाली पर निर्भर रहता है, जिसको शासन-व्यवस्था और राज्य-प्रणाली कहते हैं। इस राज्य-व्यवस्था में फौज पुलिस, आदि ऐसी संस्थाएँ हैं जिनके लिये मनुष्यों से कई तरह के टैक्स लिये जा सकते हैं। किसानों की आमदनी इसीलिये लूटी जाती है कि जिससे बादशाहों के अधिकार और विलासमय जीवन की जड़ सदियों तक कायम रह सके।

संसार में मानव-समाज दो श्रेणियों में बँटा हुआ है। एक ओर श्रीमानों का समुदाय है, तो दूसरी तरफ गरीबों का विशाल समूह है। इन गरीबों पर राज्य शासन के सभी जाल फैलाए जाते हैं, उनकी गाढ़ी कमाई प्रतिवर्ष हड़प ली जाती है। रातदिन अपना खून और पसीना एक कर देने वाले किसान और मजदूर ३६५ में दो चार भरपेट भोजन करते देखे गये हैं। सरकार की शासन-व्यवस्था एक भीषण इन्द्रजाल है। उनके कालेज, स्कूल, अस्पताल और सहयोगी सरकारी संस्थाएँ सभी गुलाम बनाने वाली मशीनें हैं। दूसरी तरफ

सरकार का यह झूठा प्रचार होता है कि यदि मौजूदा सरकार न रहे तो तुम्हारी जिंदगी खतरे में पड़.जायगी। चोर-डाकू और लुटेरों से तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। कोई दूसरी सरकार आकर तुम्हारे ऊपर शासन करेगी। इसी सिद्धांत से दुनियाँ की तमाम सरकारें जनता को अँधेरे में डाले रहकर धीरे-धीरे उनका खून चूसा करती है। कार्ल ने इन लुटेरी संस्थाओं के विरुद्ध संसार के सभी क्षेत्रों में जोरदार आंदोलन खड़ा कर दिया।

कार्ल साम्यवाद का पुजारी नहीं, वरन् साम्यवाद का जन्मदाता था। उसने सच्चे साम्यवाद को जन्म देकर, मानवता क्या है ? मनुष्य के अधिकार क्या हैं ? इसकी घोषणा संसार में की। यह प्रकृति का नियम भले न हो, लेकिन मानवता के नियम के अनुसार एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को लूट नहीं सकता, एक मनुष्य दूसरे पर अत्याचार करने का अधिकारी नहीं हैं। अगर वह ऐसा करता है, तो वह ईश्वरीय तथा प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध करता है। प्रकृति के नियमानुसार संसार में मनुष्य समानता का अधिकारी है। उसे समानता मिलनी ही चाहिए। उसकी स्वतंत्रता और समानता को छीन लेना उसके प्रति ही नहीं परन्तु ईश्वर के प्रति भीषण पाप है। मनुष्य स्वतंत्र है—और वह स्वतंत्र वायुमंडल में उत्पन्न हुआ है। समानता और समान-व्यवहारिकता उसके जीवन का आदर्श है। अमीर और गरीब के भेदों की उत्पत्ति वर्तमान् राज्य-प्रणालियों का एक कारण मात्र है।

कार्ल का सिद्धांत आदर्शवाद और सत्तावाद का भीषण संघर्ष है।

कार्ल की रचनाएँ १९ वीं सदी में लिखी गईं और बीसवीं सदी में उन रचनाओं ने यूरोप की काया-पलट कर दी। सन् १९१४ का विश्व-व्यापी महायुद्ध ही कार्ल और टाल्सटाय के सिद्धान्तों का कारण था। इस युद्ध से राजतंत्र के स्थान पर प्रजातंत्र-प्रणाली आरम्भ हुई। लेकिन कई एक राष्ट्रों के प्रजातंत्रवाद में दोष दीखने लगे और उनकी भी काया-पलट हो गई। यह भी कार्ल के सिद्धान्तों की अपूर्व विजय है। कार्ल का सिद्धान्त है कि जहाँ मनुष्य और मानवता का घोर अपमान हो, वहाँ मानवता का साम्राज्य स्थापित कर मानवता के नियम-कानून बना देना चाहिए। मानव समाज को जगाने और उन्हें मनुष्यत्व की ओर ले जाने के लिये वर्तमान शासन-प्रणाली की अनेकों मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। अगर आत्मा बलवती हुई तो मनुष्य इन सभी आपत्तियों को झेलते हुए नवीन युग की रचना सहज ही में कर सकता है। बिना आत्मिक-शक्ति, स्वावलंबन और उत्साह के सरकार के राजनैतिक आचार विचारों और शक्तियों के आगे तुम्हें अपने मनुष्यत्व की पहचान न हो सकेगी।

कार्ल योगी था, साम्यवाद का महान् ऋषि था। उसने आदर्शवाद का पाठ संसार को पढ़ाया, उसकी महान् तपस्या ने एक अद्भुत चमत्कार दिखाया। उसने अपनी पुस्तकों में जो पंक्तियाँ लिखी हैं, वे बीसवीं सदी में सजीव होकर घर-घर में उड़ने लगीं। उसने एक जगह कहा है—"किसानों तुम संसार को खिला कर भी भूखे रहते चले आए, लेकिन तुमने आज तक यह सोचने का कभी प्रयत्न नहीं किया, कि तुम भूखे रहते क्यों हो? अगर इसका उपाय तुम खोजोगे, तो

सहज ही में मिल जावेगा। तुम्हारे पास इसका एक ही उत्तर होगा, कि तुम्हारा उपार्जित धन भिन्न २ टैक्सों के रूप में सरकारी खजानों में चला जाता है। ठीक भी है, परन्तु तुम फिर भी सोचो, यह चला क्यों जाता है? इसका समाधान जब तुम कर लोगे, तुम्हारा उद्धार हो जायेगा।"

"मजदूरों! तुम दुनियाँ के अमीरों को सैकड़ों तरह के आराम पहुँचा कर भी निकम्मे, कमजोर और गरीब बने रहते हो, इसका एकमात्र कारण तुमने नहीं सोचा। तुम सोचते भी, लेकिन तुम्हें सोचने और विचार करने का अवसर भी कहाँ दिया जाता है।"

उपरोक्त पंक्तियों में कार्ल के सिद्धान्तों का निष्कर्षमात्र है। पाठक उनमें कुछ भी न पाएँगे। लेकिन उनपर विचार करने बैठ जावें, तो एक सप्ताह में भी आप उनके भावों के छिपे हुए तत्त्वों को नहीं पा सकेंगे। कार्ल का जीवन इन्हीं तत्वों के अन्वेषणों में व्यतीत हुआ। वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर भूखा और व्यस्त फिरता रहा। जंगलों और निर्जन स्थानों में उसने ग़रीबों के लिये ईश्वर से प्रार्थनाएँ कीं। जहाँ वह दुखियों की टोली देखता, उन्हीं के साथ रहने लगता था। भिखमंगों के समूहों में, किसानों की झोपड़ियों में और मजदूरों के गन्दे घरों में रहकर कार्ल ने यह अनुभव किया, कि संसार की जनसंख्या का तीसरा हिस्सा गरीबी और बेकारी में मारा जा रहा है। इसी गरीबी और बेकारी ने संसार में दुर्भिक्ष, अनाचार और अनावृष्टि को जन्म दिया है।

प्लेग, हैजा और महामारी ने संसार में जो भीषण रूप धारण किये हैं, उनका भी तो एकमात्र कारण यही है कि एक तिहाई जनता भूख

और प्यास से बेचैन रहती है। मजदूर और किसानों को तो दवा और स्वच्छ कपड़े पहिनने के लिये दो पैसे भी नहीं मिलते। कार्ल और टाल्सटाय के सिद्धान्तों पर ही महात्मा-गांधी का राजनैतिक युद्ध चल रहा है। महात्मा जी ने जिस सत्य और न्याय का प्रतिपादन किया है, वह कार्ल के सिद्धान्तों के अनुभूत तत्व-मात्र ही हैं। कार्ल कहता है– कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर स्वेच्छा से शासन करने का अधिकारी नहीं है। दूसरी तरफ टाल्सटाय का मत है—"कि संसार से शासन और शासक-प्रणाली को एकदम उठा देना चाहिए।"

सर टाम्स पेन नामक एक विख्यात लेखक ने अपनी पुस्तक "मनुष्यों के अधिकार" में लिखा है—कि भूमि को किसी एक की सम्पत्ति न समझनी चाहिये। उसपर बराबरी से सबका अधिकार होना चाहिए।"

हेनरी जार्ज एक अंग्रेज सज्जन का मत है—मानव-समानता के नाते अमीर और ग़रीब के भेद को उठा देना चाहिये। कार्ल ने इन्हीं विषयों का प्रतिपादन बड़ी सुन्दरता से किया है। यदि कार्ल के सिद्धान्तों को पुस्तकाकार रूप में लिखा जावे तो एक महान् राजनैतिक शास्त्र की रचना हो सक्ती है। मनुष्य के अधिकारों की रक्षा करने वाले महापुरुषों में कार्ल मार्क्स और महात्मा गांधी का नाम सर्वप्रथम आता है। दोनों महान् व्यक्तियों ने आडम्बरपूर्ण राजनीति में सत्य और न्याय को स्थान दिलाने के लिये जीवन भर महान् तपस्याएँ कीं। त्याग और आदर्शवाद की स्थापना के लिये दोनों विभूतियों ने संसार में अपना नाम अमर कर लिया।

कार्ल ने सिर्फ राजनीतिक गन्दगी को ही नहीं हटाया, वरन् आदर्शवाद को भी जन्म दिया। "मनुष्य का अदर्श क्या है ?" इसे संसार की उन स्वार्थी जातियों के सामने रक्खा, जो कई सदियों से मनुष्यत्व को कुचलकर कई करोड़ इन्सानों के मुँह में लगाम लगाकर, उन्हें अपनी सवारी के घोड़े बनाए चले आ रहे थे। जिनके राजमहलों में काम-पिपासा की तृप्ति के लिये हज़ारों सुन्दरियों के समूह रहते थे, जिनके इशारों पर सैकड़ों आदमियों के सर तलवार से अलग कर दिए जाते थे, आनन्द और खुशियाँ मनाने के लिये हज़ारों ग़रीबों का धन दिन-दहाड़े फौज़ी सिपाहियों से लुटवा लिया जाता था और उस धन से मनमाना आनन्द लूटा जाता था—वहाँ आदर्शवाद कहाँ तक पनप सक्ता था। यह एक असाधारण बात थी। सत्तावाद की निरंकुशता ने फ्रांस, जर्मनी और रूस में जो जो ताण्डव नृत्य किये हैं, उनसे इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। फ्रांस के लुईयों ने अपने आनन्द-मय जीवन व्यतीत करने के लिये हज़ारों मनुष्यों का कत्लेआम कराया, स्त्रियों के सतीत्व नष्ट किये, और बच्चे भालों की नोकों पर लटकाये गए। यह सब क्या था ? क्या मानवता इसी को कहते हैं ? राजाओं की शासन-प्रणाली क्या इन्हीं गरीबों के खून से नहीं सनी है ? कार्ल ने यह सब अपनी आँखों से देखा। उसकी आत्मा विचलित हो उठी—उसने रणचण्डी को जगाने के लिये एक ऐसा साहित्य तैयार किया, जिससे वह सदा ग़रीब आत्माओं में जागृति उत्पन्न करता रहे और पाप, तथा अन्यायपूर्ण राजनीति का सदा के लिये अन्त हो जाय।

कार्ल का आदर्श था—"मनुष्य-मनुष्य को पहचाने।" वह कहता

है कि इसी पंक्ति पर संसार का आदर्शवाद निर्भर है। जिस दिन मनुष्य इस तत्त्व को पहचान लेगा, उसी दिन समाज स्वतन्त्र हो जायगा और आदर्श की पताका संसार में लहराने लगेगी।

कार्ल सन् १८८३ ई० की १४ मार्च को इस संसार से चल बसा। उसकी मृत्यु आराम कुर्सी पर लेटे-लेटे हुई। उसकी मृत्यु के समय उसके होठों पर एक हल्की सी मुसकुराहट की झलक थी। बेलज़ियम (ब्रुसेल्स) से आकर उसने अपने अन्तिम दिन लन्दन में व्यतीत किए, और वहीं पर बड़ी दरिद्रावस्था में उसने संसार को छोड़ा।

मरने के बाद उसकी आत्मा ने यूरोप के देशों में भीषण राज्य-क्रांति खड़ी कर दी। सबसे पहिले रशियन राज्य-क्रांति का जन्म हुआ। और कार्ल के महान् भक्त लेनिन ने कार्ल के सिद्धातों के पथ पर चलकर रूस को स्वतन्त्र कर दिया। संसार में मजदूरों और किसानों का राज्य होना, कार्ल के सिद्धान्तों की ही अमरता है। लेनिन ने एक बार बालशेविकों की सभा में भाषण देते हुए कहा था—"कि मुझे कार्ल की महान् आत्मा आदेश दे रही है, और उसकी मूर्ति पग-पग पर दिखलाई दे रही है—"

रूस की राज्य-क्रांति, फ्रांस का विप्लव और जर्मन-क्रांति कार्ल की अमर-विजय है। जब तक संसार में जनतंत्रवाद रहेगा, तब तक कार्ल के सिद्धांतों की पूजा होती रहेगी—

कार्ल का जीवन सादा और धार्मिक था। वह किसी को भी संसार में दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत करते नहीं देखना चाहता था। उसका

सिद्धांत था, कि भाग्य-हीनता और दरिद्रता भाग्य का दोष नहीं, बल्कि राजनीति का दोष है, जिसने हमें इस अवस्था में ला ढकेला है। ईश्वर किसी को भी धन नहीं देता। धन उपार्जन करने का हेतु मनुष्य और उस देश की शासन प्रणाली है। राजनीति में सत्य और न्याय हो, तो किसी भी देश में अभागे रह ही नहीं सकते। राजनीति अभागों को भाग्यवान बना देती है, अगर उसमें सत्य और न्याय का समावेश हो।

धार्मिक-जीवन क्या है ?

धार्मिक जीवन क्या है ? इसे स्पष्टरूप से कार्ल ने समझाया है। धार्मिक-जीवन के लिये अच्छे गुणों की आवश्यकता है। अच्छे गुणों को धारण करना ही आदर्श और धार्मिक जीवन है। इसके लिये किसी मनुष्य और मूर्ति की पूजा की आवश्यक्ता नहीं। संसार की सभी महान् आत्माओं ने धार्मिक-जीवन व्यतीत करना सद्गुणों की प्राप्ति बतलाई है। कार्ल का मत है,—"धार्मिक-जीवन गिरजाघरों में जाने से नहीं बनता, वल्कि तुम अपना स्वर्ग घर में ही बना सक्ते हो, अगर तुममें आत्मिक स्वावलंबन, और सद्गुणों की शक्तियों का अभाव नहीं है। इन शक्तियों के संगठन से तुम स्वर्ग ही नहीं वरन् स्वर्गतुल्य एक विशाल साम्राज्य भी स्थापित कर सक्ते हो। ईश्वर-भक्ति के उपदेशों से तुम धार्मिक पुरुष नहीं बन सक्ते। तुम्हें मनुष्य-सेवा का पाठ पढ़ना पड़ेगा, आत्म-संयम और इन्द्रिय-निग्रह के लिये कठोर तपस्याएँ करनी पड़ेंगी। पाशविक-वृत्ति को रखते हुए धार्मिक-जीवन का दावा करना ढोंग है"—

चीनी प्रजातंत्र के अभिनेता

डाक्टर सनयातसेन और सेनापति

चियांगकाई-शेक

संसार के सभी ऐतिहासिक पुरुष डाक्टर सनयातसेन का नाम बड़े गर्व से लेते हैं। डाक्टर सनयातसेन ही चीन के भाग्य-विधाता थे। उनके दाहिने हाथ चेङ्गकाई-शेक हैं जो आजकल जापान से लोहा ले रहे हैं। सन् १८९५ ई० की बात है, जब कि डाक्टर सनयातसेन ने कैन्टन के मेडीकल हाल में "क्योमिनटॅंग" नाम की एक संस्था को जन्म दिया था। डाक्टर सनयात और उसकी संस्था के सदस्य "काओ-लाओ हुई" कहलाते थे। डाक्टर सेन उस समय नवयुवक थे, उसने अपनी संस्था में वीर लड़ाके भरती किये थे। इसी समय उसने माञ्चुको पर धावा करना चाहा, लेकिन इस प्रयत्न में वे असफल रहे। इस राजविद्रोह में उन्हें चीन छोड़कर भागना पड़ा। वे बहुत समय तक अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में रहकर राजनीति का अध्ययन करते रहे। सन् १९०१ ईस्वी में डाक्टर सेन ने जापान में "टङ्ग मेङ्ग-हुई" नाम के एक दल का विराट संगठन किया। सन् १९१२ ईस्वी में बाक्सर विद्रोह नाम की एक भीषण राज्यक्रांति उठ खड़ी हुई, जिसमें डाक्टर सनयातसेन की संस्था का विशेष भाग था। इस क्रांति के बाद "क्योमिनटॅंग" चीन का एक राष्ट्रीय दल बन गया।

इस राष्ट्रीय दल में सभी चीनी-पार्लियामेण्ट के सदस्य थे। सन् १९१३ ई० में चीनी प्रेसीडेन्ट "युआन-शिहके" ने पार्लियामेण्ट से क्योमिनटेङ्ग के सभासदों को निकाल दिया। जब "युआन-शिहके" ने सन् १९१६ ई० में प्रजातंत्रीय शासन तोड़कर राजतंत्रीय शासन की स्थापना करनी चाही, तब क्योमिनटॅंग ने खुल्लमखुल्ला विद्रोह कर दिया।

सन् १९१७ में चीनी पार्लियामेंट तोड़ दी गई। तब क्योमिनटॅग के सभासदों ने कैन्टन में जाकर अपनी-अपनी अलग सरकार कायम की। दक्षिण के सात सूबों ने क्योमिनटॅग की आधीनता स्वीकार कर ली। सन् १९२० ईस्वी में इन सात सूबों में फूट हो जाने से वे शंघाई-कैन्टन और युनन नाम के तीन दलों में विभक्त हो गए। सन् १९२१ ई० में डाक्टर सेन के असीम प्रयत्न से सभी सूबों में फिर एकता कायम हो गई। इन्हीं सात सूबों ने डाक्टर सेन को अपने प्रजातंत्र का प्रथम सभापति चुना। परन्तु डाक्टर सेन बहुत समय तक उस पद पर नहीं रह सके। उन्हें शीघ्र ही कैन्टन छोड़ देना पड़ा।

डाक्टरसेन ने कैन्टन छोड़ कर अपनी क्योमिनटैङ्ग-कांग्रेस का प्रचार चीनी विद्यार्थियों और आमलोगों में करना आरम्भ कर दिया। अब "क्यो० कांग्रेस" का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ने लगा और जनता की उसपर विशेष-भक्ति हो गई। सन् १९२१ में इस चीनी कांग्रेस के पाँच-लाख सभासद थे। "क्योमिनटैङ्ग" के सिद्धांतों को मानने वाले ही इस सभा के सदस्य हो सकते थे। प्रत्येक दूसरे वर्ष इस सभा का अधिवेशन होना आरंभ हो गया। तीसरी कांग्रेस के अधिवेशन में ४५९ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे।

सन् १९२६ में चीन के दो प्रांत ही राष्ट्रीय दल के शासन में थे, लेकिन सन् १९२८ ई० के जून मास तक समस्त देश उनके हाथ में आ गया। डा० सेन की इस सफलता पर उन्हें संसार ने उनपर बधाइयों की अपूर्व वर्षा की। सेन की अमृत और तेजस्वी वाणी ने, उनकी उत्तेजक और वीर-रस प्रधान व्याख्यानों ने, जनता के हृदयों को

अपनी ओर खींच लिया। डाक्टर सेन जहाँ-जहाँ प्रजातंत्र का संदेश लेकर गये, वहीं उनका अपूर्व स्वागत हुआ और जनता की आश्चर्य-जनक सहानुभूति उन्हें प्राप्त हुई। जनता ने डाक्टर सेन और उनकी कांग्रेस को अपनी रक्षा के निमित्त सच्चा सिपाही समझा। चीन के विद्यार्थियों ने उनकी जो सहायता की वह इतिहास में सोने के अक्षरों में लिखी गयी स्वर्ण-घटनाएँ हैं। विद्यार्थियों ने केवल तन-मन-धन से ही उनकी सहायता नहीं की, वरन् आत्मोत्सर्ग का एक ज्वलन्त उदाहरण संसार के सामने उपस्थित किया।

डाक्टर सेन का प्रभाव समस्त चीन में फैल गया। कांग्रेस की सेना जिस ओर जाती थी, सबसे पहिले वहाँ के विद्यार्थी और मजदूर ही विद्रोह का झंडा ऊँचा करके क्योमिनटैङ्ग को विजय प्राप्त कराते थे। उनकी महान् सफलता के लिये हजारों विद्यार्थी और लाखों मजदूर अवैतनिक कार्य कर अपूर्व त्याग का परिचय देते थे। इस तरह बिना किसी परिश्रम के डाक्टर सेन ने अद्भुत सफलताएँ प्राप्त कीं। समूचे देश में डा० सेन के गीत गाये जाने लगे।

"सेनापति जनरल चांग-काई-शेक"

नवीन राष्ट्रीय युद्ध सन् १९२६ ई० में प्रारम्भ हुआ। जनरल चिआङ्ग-काई-शेक राष्ट्रीय सेना के उत्साही सेनापति थे। उन्होंने राष्ट्रीय सेना को यांगटिसी नदी तक बढ़ाकर राष्ट्रीय ध्वजा फहराई। ४ महीने की भयानक लड़ाई में उन्होंने पेकिंग राज्य के मुकाबले में वुचाङ्ग में केन्द्रीय सरकार की स्थापना कर डाली। सन् १९२१ के मई और जून के महीने में यांगटिसी नदी पार कर शानटङ्ग

सूबे में प्रवेश किया, लेकिन राजतंत्रीय-सेनाओं द्वारा पराश्त हुए ? इस पराजय से चिआङ्ग-काई-शेक का उत्साह एकाएक बहुत गिर गया। उन्होंने राष्ट्रीय सेना के सेनापति पद से इस्तीफा दे दिया और एक अलग युद्ध मंदिर में रहने लगे। कुछ समय बाद उन्होंने जापान की यात्रा की। सन् १९०१ ईस्वी में चिआङ्ग की शादी डा० सनयातसेन की साली मिस संग मीलीना के साथ हुई। इसी समय से वे डाक्टर सेन के साथ उनकी पार्टी में शामिल हुए।

यही चिआंग-काई-शेक आज अपने चीन के लिये जापान से लोहा ले रहे हैं। चिआंग-काई-शेक ने अपनी मुट्ठी भर शिक्षित सेना को साथ लेकर जापान के मानमर्दन में अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया। जापान की दिन-प्रति दिन विजय होने पर भी यह स्वतंत्रता का दीवाना जापान को चुनौती दे रहा है कि जब तक चीन देश का एक भी बच्चा जीवित है, तब तक वह जापान से लोहा लेता रहेगा।

सभ्य जापान ने जिन नग्न-कलाओं का प्रदर्शन चीन में किया है, उससे पता चलता है कि चीनियों ने जापान के घोर अत्याचार होने पर भी उन्होंने अपना मस्तक नहीं झुकाया। कैन्टन और नानकिंग विजय पर जापान ने हजारों स्त्रियों पर जघन्य अत्याचार किये। जापानी सिपा-हियों ने चीनी, बाल-वनिता, युवती और वृद्धा-स्त्रियों के साथ घोर व्यभिचार करके उन्हें बंदूकों और तोप के गोलों से उड़ा दिया। नन्हें २ बालक उनकी माताओं की गोद से छीनकर आग में झोंक दिये गये। बालकों के आगे उनकी माताएँ नंगी कर जीवित जला दी गईं। इतना ही नहीं, हजारों नागरिकों को कतार बांधकर गोली से उड़ा दिया

गया। छोटे २ बच्चों की बड़ी ही दर्दनाक और भयंकर हत्याएँ की गईं।

लेकिन आत्माभिमानी और स्वदेशाभिमानी चीनी ये सभी अत्याचार हँसते हुए सहन कर रहे हैं। बच्चे मरते समय और युवतियाँ सिसकती हुईं, चिआङ्ग के जयनारे लगाकर अपने प्राण देश की बलिवेदी पर आज भी समर्पण कर रही हैं। चिआंग-काई-शेक ने इस घोर अन्याय को रोकने के लिये एक नहीं कई बार संसार से अपील की, लेकिन संसार ने बहुत दबी जबान से इसका विरोध किया। लीग आफ़ नेशन्स के पास भी तार पर तार भेजे गये परन्तु किसी ने भी इसका विरोध जोरों से नहीं किया।

भारत के सर्वश्रेष्ठ महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर और पण्डित जवाहरलाल जी नेहरू ने चिआङ्ग-काई-शेक और उनके स्वतन्त्र्य युद्ध पर बधाई और सहानुभूति के तार भेजकर उनके साथ हमदर्दी प्रकट की। इतना ही नहीं भारत की राष्ट्रीय-कांग्रेस ने एक सहायता-मंडल भी चीन भेजकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया। आजकल यह भारतीय-मिशन जिसमें डाक्टर और नर्सें भी हैं, चीनी युद्ध क्षेत्र में बड़े उत्साह के साथ कार्य कर रहा है।

गरम और नरम दल

सन् १९२१ ईस्वी में क्योमिनटेंग में आपस में बड़ा मतभेद हो गया। इसके दो प्रमुख कारण थे। नरम और गरम सिद्धान्तों का तर्क-वाद। नरम दल वाले आपस में समझौता करके औपनिवेशिक-स्वशासन की स्थापना चाहते थे, और प्राचीन राजपरिवार को कायम रखने के पक्ष में थे। गरम-दलवाले पूर्ण आज़ादी के पक्षपाती थे। वे पुराने

दरों के शासन और राजपरिवार को जड़ से खोदकर फेंक देना चाहते थे। बड़े प्रयत्न के साथ इन दोनों दलों में समझौता हुआ, परन्तु फिर भी थोड़ा २ मतभेद बना ही रहा।

कम्यूनिस्ट-पार्टी

चीनी कम्यूनिस्ट-पार्टी का जन्म सन् १९२० ईस्वी में हुआ। इसका कार्यक्रम इतना गूढ़ और रहस्यमय था कि इसका पता किसी को भी न था। जब कम्यूनिस्ट दल के लोग "क्योमिनटैङ्ग" में शामिल होने लगे, तब इसके आस्तित्व का भलीभाँति पता चला। सन् १९२५ ईस्वी में डाक्टर सनयातसेन ने कम्यूनिस्ट-पार्टी को अपने राजनैतिक दल में मिला लिया। कुछ समय तक तो संगठित कार्य चलता रहा। लेकिन थोड़े ही समय बाद कम्यूनिस्टों ने गरमदल वालों को निकाल बाहर करना चाहा। इससे फिर गहरा मतभेद हो गया। लेकिन इस बार चियांग-काई-शेक ने गरमदलवालों को निकाल बाहर कर दिया।

इस घटना के बाद ही १५ अप्रैल सन् १९२१ ई० को क्योमिन-टैंग का एक विशेष अधिवेशन नानकिंग में हुआ। हांङ्कों की कम्यूनिस्ट सरकार के मुकाबले में नानकिङ्ग में एक स्वाधीन-सरकार की स्थापना की गई। इस कमेटी ने गरमदल वालों को निकालकर हांकों की कम्यू-निस्ट सरकार को नष्ट कर दिया। ११ दिसम्बर सन् १९२१ ईस्वी को गरमदल वालों ने अपना संगठन कर कैन्टन शहर को अपने अधिकार में कर लिया और नानकिंग के नरमदल वाले अफ़सरों को निकाल बाहर किया। लेकिन सरकारी सेना ने कैन्टन को छीन लिया। इतिहासकार और

राजनीतिज्ञों का मत है कि इस आपसी फूट में रूसी बोलशेविकों की एक भारी योजना छिपी हुई थी।

इस घटना के बाद ही नानकिंग सरकार ने सोवियट सरकार से अपना संबन्ध-विच्छेद कर लिया, और चीन से समस्त रूसी लोगों को निकाल बाहर करने का हुक्म जारी कर दिया। साथ ही दो हजार कम्यूनिस्ट लोगों को प्राण-दण्ड की आज्ञाएँ दी गईं। इस तरह नरम-दल वालों ने क्योमिनटांग पर कब्जा कर लिया। साथ ही अपने राज्य में शांति की स्थापना की। इन समस्याओं को सुलझाने के बाद सन् १९२८ ई० में, चिआंग-काई-शेक, फेनापुसआंग और येनसी-शान ने मिलकर उत्तर की ओर बढ़कर पेकिंग पर अपना कब्जा कर लिया। राष्ट्रीय सरकार ने अब नानकिंग को अपनी नवीन राजधानी घोषित की। सन् १९२४ तक डाक्टर सेन ने सोवियट राज्य-प्रणाली की स्थापना पर विचार भी न किया था। इस समय तक उन्हें सोवियट प्रणाली में विश्वास नहीं था। वे अमेरिकन तथा यूरोपीय शासन-विधानों की सत्ता अपने देश में कायम करना चाहते थे। १९२३ ई० मे उन्होंने अमेरिका और कनाडा की शासन-प्रणाली का अध्ययन करने के लिये एक मिशन भेजा। लेकिन मिशन को सफलता नहीं मिली। तब उन्होंने अंग्रेजों से सहायता लेनी चाही, परन्तु अंग्रेजों ने भी योग्य सहायता देने से इन्कार कर दिया। इस ओर से निराश होकर डाक्टर सनयात-सेन सोवियट के प्रतिनिधि काराखान के पास गए। काराखान ने माईकेल बोरोडिन को सेन के लिये एक सलाहकार नियुक्त कर दिया। अब डाक्टर सेन ने सोवियट-ढंग का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया।

राष्ट्रीय दल ने सोवियट-कमेटी-सिस्टम को ग्रहण किया और उसी के अनुसार अपनी शासन-प्रणाली निर्धारित की।

क्योमिनटैङ्ग राष्ट्रीय कांग्रेस के उत्सव पर केन्द्रीय-शासन कौंसिल का चुनाव होता था। इस कौंसिल का चेयरमैन स्वयं चीनी प्रजातंत्र का सभापति होता था। केन्द्रीय शासन-सभा स्टेट-कौंसिल का चुनाव करती थी। समस्त शासन-बोर्ड में १० मन्त्री होते थे। अक्टूबर सन् १९२८ में चीनी प्रजातंत्र के सभापति जनरल चियाङ्ग-काई-शेक चुने गए। यह प्रजातंत्र समस्त प्रजातंत्रों की प्रणाली से भिन्न था। इसमें न तो कोई पार्लियामेण्ट थी और न किसी शासन-विधान ही को स्थान दिया गया था। एक तरह से राजनीतिक दल ही देश में शासन करता था। दल के विचारमात्र ही शासन-विधान थे।

इसी समय डाक्टर सेन बीमार होकर पेकिङ्ग के राकफेलर अस्पताल में पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक वसीयतनामा लिखा, जो इस प्रकार था:—

"चीन को स्वतंत्र बनाने के लिये मैंने लगातार ४० वर्ष तक परिश्रम किया। मेरे अनुभव ने मुझे यह बतलाया है कि अपने उद्देश की सिद्धि के लिये हमें चीन की समस्त जनता की सहानुभूति प्राप्त कर लेनी आवश्यक है। चीन अभी अपनी सफलता से बहुत दूर है। इसलिये यह आवश्यक है कि मेरे तमाम मित्र और कांग्रेस अपना युद्ध जारी रक्खे।

डाक्टर सेन का अन्तिम उपदेश

मृत्यु शैय्या से डाक्टर सेन ने निम्नलिखित संदेश चीनी जनता को भेजा :—

"मेरे साथियो, लड़ाई को जारी रक्खो। राष्ट्रीय समस्याओं के हल करने के लिये तथा दूसरे देश के साथ अनुचित संधियों को रद्द करने के लिये नये जोश से काम करो। सफलता अभी बहुत दूर है। यह कार्य शीघ्र पूरा कर डालना चाहिए।"

डाक्टर सेन के सिद्धांत

डाक्टर सनयातसेन के तीन सिद्धांत बहुत ही प्रसिद्ध हैं। उनका पहिला सिद्धांत यह था कि समस्त चीन स्वाधीन बना दिया जाय। विदेशियों की थोड़ी-सी भी सत्ता इस देश में न रहने पावे। दूसरा सिद्धांत यह था कि प्रजातंत्र सरकार कायम की जावे और तीसरा सिद्धान्त साम्यवाद-शासन-प्रणाली थी। वे निजी-संपत्ति-प्रथा को उठा देने के लिये पूँजीवाद के विरुद्ध भी युद्ध घोषणा करने वाले थे। वे चाहते थे कि कारखाने और रेलों का प्रबन्ध जनता के हाथों में रहे जिससे सर्व-साधारण पूरा लाभ उठा सके। बस! इसी सिद्धांत पर लोग उन्हें साम्यवादी कहने लगे थे! क्वोमिनटँग का सबसे प्रथम सम्मेलन सन् १९२४ ईस्वी में कैन्टन नगर में हुआ। इस अधिवेशन में डाक्टर सेन के सिद्धांत, कांग्रेस के विशेष मनोनीत सिद्धांत मान लिए गए। इन सिद्धांतों में कुछ परिवर्तन करके और भी गरम बना दिये गए। डाक्टर सेन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक (*National Reconstruction Programme*) में चीन देश की उन्नति के २५ सुगम मार्ग बतलाये हैं। उन्होंने उसमें सैनिक-व्यवस्था और जनता को शासन के लिये नागरिक ज्ञान की आवश्यक्ता बतलाई है। जबतक जनता

अपने अधिकारों को नहीं जान लेती तबतक इसपर निरंकुश-सत्ता ही जारी रहेगी। इसलिये सर्व-प्रथम जनता को अपने अधिकारों का पर्याप्त ज्ञान होना ज़रूरी है। अंत में उन्होंने राष्ट्रीय-शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया था। किसी भी पराधीन देश में जबतक राष्ट्रीय-शिक्षा पद्धति अनिवार्य न होगी तब तक वह देश पराधीनता के पंजे से छुट-कारा नहीं पा सकता। डाक्टर सेन ने अपने जीवन-काल में १,००,००० मील लम्बी रेल तथा १०,००,००० मील की सड़कें तथा नवीन बंदर-गाहों के बनाने की अनुमति दे दी थी।

सन् १९२६ ईस्वी के अक्टूबर मास में क्योमिनटैङ्ग कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ, जिसमें वैदेशिक नीति की पर्याप्त समालोचना की गई और देश की आंतरिक समस्या की पूर्ति के लिये बहुत से प्रस्ताव पास किये गये, जिनमें मुख्य प्रस्ताव निम्नलिखित थे—

१—विषम संधियों को रद्द करना। २—निर्यात कर की स्वा-धीनता। ३—चुंगी को रद्द करना। ४—राजनीति में औरतों को बरा-बर अधिकार देना।

सन् १९२८ के अक्टूबर मास में कांग्रेस कार्य-कारिणी की विशेष बैठक हुई। इसमें डाक्टर सेन के तीनों सिद्धांतों को अमल में लाने की घोषणा की गई। जनता को प्रजातंत्रीय शासन के योग्य बनाने के लिये निम्न प्रस्ताव पास किए गए।

१—जनता जबतक प्रजातंत्र शासन के योग्य नहीं होती तब तक चीनी राष्ट्रीय दल ही देश पर शासन करेगा।

२—देश में वैध शासन की स्थापना के लिये समस्त चीन में प्रचार किया जावे।

३—देश के समस्त कानूनों में जो अब तक प्रचलित हैं संशोधन और परिवर्तन किये जावें।

४—क्योमिनटैङ्ग की केन्द्रीय 'कार्यकारिणी कमेटी की राजनैतिक कौंसिल, राष्ट्रीय-सरकार द्वारा किये हुए कार्यों की देखभाल और निरीक्षण करेगी।

डाक्टर सेन की आन्तरिक इच्छाएँ

राजनीतिक-विशारदों का कथन है कि डाक्टर सेन का सबसे प्रबल आंदोलन यह था कि, संसार में भ्रातृत्ववाद उत्पन्न किया जावे तथा एक देश दूसरे देश पर कभी किसी तरह का विषम आघात न करे, और न किसी देश की स्वाधीनता का हरण करे। मनुष्यत्व के नाते संसार में सबको बराबरी का स्थान दिया जावे। बलवान राष्ट्रों का यह कर्तव्य होना चाहिये कि वे अपनी अल्प-संख्यक जातियों की तथा छोटे-छोटे राष्ट्रों की रक्षा करें। चीन इसी नीति का उपासक था, और उसने आजकल के स्वार्थी राष्ट्रों की तरह किसी भी देश पर अपना प्रभुत्व नहीं जमाया, और न संसार के आगे किसी भी तरह की अनुचित माँगों को उपस्थित किया।

डाक्टर सेन ने यह भी घोषणा की थी, कि साम्राज्यवाद संसार के राष्ट्रों को नष्ट कर देगा। चीन जब ताकतवर हो जावेगा, उसके पास अखंड शक्ति हो जावेगी, तब वह संसार के कमजोर राष्ट्रों की

भरपूर सहायता करेगा। उपरोक्त शब्दों से डाक्टर सेन ने संसार के अधिकांश छोटे-मोटे राष्ट्रों की पूर्ण सहानुभूति प्राप्त कर ली। डाक्टर सेन ने वैदेशिक नीति के संबंध में अपनी घोषणा पहिले ही कर दी थी कि चीन उन्हीं कर्जों को मानेगा जो उसकी आर्थिक हानि से परे होंगे और अन्य कर्जें जो राजतंत्रीय शासन ने किए हैं, उन्हें वह कदापि अदा न करेगा। दूसरी घोषणा सेन ने यह की थी, कि चीन उन संधियों को रद्द कर देगा, जो उसकी स्वाधीनता में बाधक होंगी तथा नवीन संधियों में यह विशेष ध्यान रखा जावेगा कि उन संधियों से किसी भी देश की आज़ादी में बाधा तो नहीं पहुँचती। अभी तक संसार की संधियों में संसार के राष्ट्रों ने बराबरी के अधिकार नहीं दिये थे। डाक्टर सेन ने इस बात की भी घोषणा की थी कि अब जो संधियाँ होंगी, उनमें चीन सभी बलवान् राष्ट्रों के बराबर ही अपने हस्ताक्षर करेगा।

डाक्टर सेन की नीति का लक्ष्य था कि वह संसार में एक शांति का राज्य स्थापित करेंगे, किन्तु उनकी यह प्रबल धारणा भविष्य के गर्भ में ही रह गई।

—०—

इटली का तानाशाह

सीन्योर-मुसोलिनी

१—मुसोलिनी की आत्म कथा।

२—मुसोलिनी और इटली।

३—अबिसीनिया-हरण।

४—ख़ूँरेज़ी और ज़ुल्म।

५—इटली का फासिज्मवाद।

शेरदिल-मुसोलिनी

आधुनिक इटली का राष्ट्र-निर्माता, लाखों इटालियनों का भाग्य-विधाता, इटली को एक महान् राष्ट्र बनाने वाला, आज का मुसोलिनी कल क्या था, इसे पाठकगण बहुत कम जानते होंगे। मुसोलिनी की तड़क-भड़क और तेज-मिजाजी देखकर यूरोप के सभी राष्ट्रों की नींद हराम है! सब देशों के राजनीतिज्ञों की दृष्टि इसीलिये उसपर लगी रहती है कि आज न मालूम वह क्या करने वाला है। मुसोलिनी ने अपने आधुनिक तप और आध्यात्मिक शक्ति से संसार के सभी राष्ट्रों पर अपनी धाक जमा ली है।

मुसोलिनी का जन्म २९ जुलाई सन् १८८३ ई० में एक लुहार के घर हुआ था। बचपन में वह उसी तरह रहता था जिस तरह

साधारण गरीबों के बच्चे रहते हैं। उस दिन किसे यह मालूम था कि आज का धूल-धूसरित यह बालक कल इटली का सर्वेसर्वा बन जायगा। बालक मुसोलिनी ने साधारण दर्जे की शिक्षा पाई थी। धीरे-धीरे वह अपने पिता के कार्यों में विशेष भाग लेने लगा। परन्तु उसे अपने घर के काम से घृणा हो गई। मुसोलिनी की बुद्धि का विकास धीरे-धीरे हो रहा था; प्रकृति उसे इटली का सर्वेसर्वा बनाने के लिये अपने आध्यात्मिक गुणों से विभूषित कर रही थी। मुसोलिनी का पिता भी धीरे-धीरे यह अनुभव करता गया; और उसने शीघ्र ही मुसोलिनी के लिये उच्च शिक्षा का विशेष प्रबन्ध कर दिया। कुछ दिनों के बाद मुसोलिनी ने अध्यपाक का डिप्लोमा प्राप्त कर शिक्षक का पद ग्रहण किया। परन्तु यह कार्य उसकी रुचि के अनुसार न था। वह स्विट्जरलैण्ड जाकर रहने लगा। मुसोलिनी का बचपन और युवावस्था बड़ी ही उमंगों और आशाओं में ओतप्रोत होकर निकला। उसका अभी तक का जीवन, कठिनाईयों के साथ बीता। देश-सेवा के लिये क्या-क्या कष्ट झेलने पड़ते हैं; इसका अनुभव उसने विदेशों में रहकर किया। अपने असीम और आशातीत अनुभवों से उसने अपने भविष्य-निर्माण का निश्चय किया। उसने जो सिद्धान्त स्थिर किया उसका उद्देश था;—कठिनाईयों का सामना करना, खाने-पीने और मौज करने की अपेक्षा, मर जाना अधिक श्रेष्ठ है!"—स्विटजरलैण्ड में उसके सामने इतनी आर्थिक कठिनाईयाँ थीं कि उसे कई दिन तक भूखों रह जाना पड़ा था! अंततः उसने राजनैतिक मार्ग ग्रहण किया; और अपने दृढ़ उद्देश्यों की पूर्ति के लिये वह दृढ़-प्रतिज्ञ और साहसी बन गया! वह सम-

झता था, कि प्रत्येक पुरुष अगर चाहे तो अपने पवित्र हृदय और दृढ़ साहस से अपने उद्देश्यों और सिद्धांतों की रक्षा कर सक्ता है ! आगे बढ़कर पीछे हटना वह जानता ही नहीं था । इसी तरह उसने बीर नैपोलियन के उन वाक्यों की पुनरावृत्ति की कि 'दुनियाँ में असम्भव शब्द मूर्खों के कोष में होता है ।' मुसोलिनी के राजनैतिक-जीवन का यहीं से आरंभ होता है! स्विड्जरलैण्ड में मुसोलिनी के कई भाषण हुए, जिनके कारण उसे शीघ्र ही स्विड्जरलैण्ड छोड़कर भागना पड़ा। वहाँ से वापस आकर मुसोलिनी सेना में सिपाही हो गया । यह सैनिक जीवन उसे बहुत पसन्द आया ! लेकिन वह बहुत दिनों तक सैनिक भी न रह सका। इस थोड़े से ही समय में मुसोलिनी की अवस्था चार जीवन धाराओं में बहकर समाप्त हो गई । पहिले लोहार का काम सीखा, फिर शिक्षक बना। शिक्षक के बाद निर्वासित हुआ और निर्वासन के बाद सैनिक बना । इसी समय उसकी स्नेहमयी माता; जो इसे भविष्य-जीवन के उज्ज्वल पथ पर बढ़ा रही थी; एकाएक इस संसार से चल बसी ! मुसोलिनी की माता का प्रभाव मुसोलिनी पर बहुत अधिक था ! इसी समय से मुसोलिनी सैनिक-क्षेत्र से अलग हो गया । इसके बाद उसने अपने भविष्य जीवन का दूसरा मार्ग निर्धारित किया ! उसने सभी क्षेत्रों के विशाल अनुभव प्राप्त किए थे ! उसने अनुभवों के अधार पर एक पत्रकार होना निश्चित किया। इस कार्य से राजनैतिक क्षेत्र में एक हलचल-सी मच गयी। फासिज्म के सरल से सरल सिद्धान्त जनता के सामने रखकर इटली की समस्त जनता को अपनी ओर आकर्षित करना आरम्भ कर दिया ! उसने शीघ्र ही एक समाजवादी पत्र को

जन्म दिया ! मुसोलिनी का पत्र "अवन्ति" के नाम से मशहूर था। उसके धार्मिक लेखों में गंभीर राष्ट्रीयता की प्रतिध्वनि और स्वतंत्रता की पूरी गूँज थी !—

कोई भी नया सिद्धांत, धर्म और कानूनों के प्रचलित होने के पहिले लोक-संग्रह की आवश्यका होती है। जबतक लोकमत उनके अनुकूल नहीं हो जाता, सिद्धांतवादी को सफ़लता नहीं मिलती। सिद्धाँतवादी के सिद्धाँत अगर अकाट्य प्रमाणित हुए, तो सहज़ ही में उनको जनता अपना लेती है ! फासिज्म का सिद्धाँत और उसके रूप में बहुत अन्तर है। उसके जितने पवित्र सिद्धाँत हैं, उतना उसका रूप आकर्षित नहीं है। उसके रूप में बर्बरता—खूँरेजी और स्वार्थपरता झलकती है। इससे शाँति और विश्व-सभ्यता के आचरण नहीं मिलते ! दुनियाँ जितना फासिज्म के हौए से चौंक रही है, उससे कहीं अधिक वह यह भी जानती है, कि ऊपरी शक्तियों पर रहने वाली सत्ता बहुत कुछ समय के भीतर टूट सकती है। लोक-तंत्रवाद कभी नष्ट न होने वाला सिद्धान्त है। लोकतंत्र एक जनसमूह के उचित और तर्क से भरे हुए विचारों का शासन-विधान है। जनता ऐसे शासन-विधान से असंतुष्ट भी हो जावे, तो उसे संतुष्ट होने का अवसर भी दिया जाता है। फासिज्म इस सिद्धान्त को नहीं मानता। फासिज्म में जो कैबिनेट होती है, वह डिक्टेटर की गुलाम बनकर रहती है। उसे डिक्टेटर के विरुद्ध कुछ कहने का अधिकार नहीं रहता। जनता की उचित माँगें स्पष्टरूप में रखना फासिज्म-शासन में विद्रोह है। मुसोलिनी जो कहता है, वही उसका कानून, और वही उसको

कैबिनेट है। वह मंत्री से सिर्फ परामर्श कर सक्ता है, लेकिन उस परा-
मर्श को वह मानने के लिये बाध्य नहीं है।

मुसोलिनी कितना ही सभ्य पुरुष क्यों न हो, उसका जीवन क्यों
न सादा हो, लेकिन उसके फासिस्ट सिद्धान्त में बर्बरता के जो कुछ
भी नमूने मिलते हैं, उससे विदित होता है कि वह प्रबल राजतंत्रवादी
है। उसकी हुकूमत एक नृशंस अत्याचारी की हुकूमत है। अबिसीनिया
हड़पने के बाद, वहाँ पर जंगली जातियों के प्रति जो अत्याचार किये
गए हैं उनसे, सभ्य संसार के इतिहास में घोर कालिमा लगती है।
अभी हाल की घटनाओं से जो पता चला है वह असत्य नहीं।
सैकड़ों अबिसिनिया निवासियों को जीवित तेल के कड़ाहों में भून
डाला गया। कई फासिस्ट विरोधी पादरियों के सिर काट कर गिरजों
में भेज दिए गए। यह सब दुष्कर्म अपने सिद्धान्तों की विजय के
लिये किए गए।

यह वह समय था जब महायुद्ध समाप्त हो चुका था। मुसोलिनी
ने महायुद्ध में भाग लिया और अंत में विजय भी इटली को मिली
थी। इटली में एक और दल था, जो मुसोलिनी के दल से अधिक
प्रबल था। यह दल मुसोलिनी के विचारों का विरोधी था। युद्ध के
अवसर पर यह दल युद्ध से तटस्थ रहना चाहता था, और अपने देश
को आर्थिक हानियों से बचाने के लिये प्रबल आंदोलन करता था।
परिणाम यह हुआ कि युद्ध की गड़गड़ाहट और सरगर्मी से इटली की
जनता युद्ध में कूद पड़ी और मुसोलिनी भी जनता के साथ हो गयी।
सामाजवादी पत्र अवन्ति के कड़े लेख होने के कारण उसे बंद करना

दिया गया। लेकिन मुसोलिनी अपने विचारों में दृढ़ था। उसने शीघ्र ही अपने कुछ साथियों को साथ लेकर "पोपली दि इटालिया" नामक पत्र निकाला। युद्ध में इटली की विजय, मुसोलिनी का अपूर्व साहस था। इटली अब मुसोलिनी पर जान देने लगा, फिर भी घरेलू झगड़े इतने बढ़े-चढ़े थे, कि मुसोलिनी इससे परेशान था। मुसोलिनी की इच्छाएँ इन झगड़ों से पूरी न हो सकीं। मुसोलिनी चाहता था, कि आसपास के प्रदेश, जो कुछ दिन पहिले वह खो चुका था, पुनः वापस ले लें। लेकिन वे प्रदेश ज्यों के त्यों, शत्रुओं के हाथ में बने रहे। मुसोलिनी को गेरीबाल्डी और मेजिनी की अमर स्मृतियाँ, जाग्रत कर रही थीं। उन दिनों विदेशी शक्तियाँ इटली को लूट रही थीं। इटली विदेशियों का क्रीड़ा-स्थल बना हुआ था। और यह प्रकट हो रहा था कि यूरोप के नक़शे से शीघ्र ही इटली का नामोनिशान मिट जायगा। मुसोलिनी ने ऐसे ही भयानक समय में राजनीतिक-क्षेत्र में प्रवेश किया और बड़ी ही अविराम गति से इटली की रक्षा करने में व्यस्त हो गया।

फासिस्ट-शासन

सन् १९१९ की २३ मार्च को फासिस्ट कार्यक्रम बनाकर तैयार किया गया, जिसका एकमात्र उद्देश्य था विदेशियों को निकाल बाहर करना। इसके लिये आवश्यकता थी इटली के नवजवानों के साहसपूर्ण संगठन की। मुसोलिनी ने वही किया, जिसकी देश को आवश्यक्ता थी। हज़ारों नवयुवकों को साथ लेकर मुसोलिनी चुनाव-संग्राम में कूद पड़ा,

लेकिन हार गया। इस हार से मुसोलिनी तिल-मात्र भी विचलित न हुआ, वह और भी अधिक तत्परता से कार्यक्षेत्र में अग्रसर हुआ। उसने अपने संगठन को और भी दृढ़ बनाया। अपने लेखों से इटली में एक नई जान पैदा कर दी। उसके फड़कते हुए लेखों से इटली-निवासी घोर-निद्रा से जाग उठे। कई हजार नवयुवक, फासिस्ट-सेना के वीर सिपाही बन गए। इस समय मुसोलिनी ने दो उद्देश्य अपने सामने रखे। पहिला उद्देश्य तो यह था कि देश से विदेशियों को निकाल बाहर करना और दूसरा था, यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्रों के समान इटली को शक्तिशाली और संपत्तिवान् बना देना। मुसोलिनी के पास अब वह शक्ति आ गई थी, जिसका उसे धीरे-धीरे अनुभव हो रहा था। वह समझ रहा था कि अब शासन-सूत्र को हाथ में लेने का समय आ गया। फासिस्टों की बढ़ती हुई सेना को देखकर इटली के बादशाह ने स्वयं मुसोलिनी को अपनी सरकार स्थापित करने के लिये निमंत्रित किया। मुसोलिनी ने इस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया और शीघ्र ही अपनी सरकार कायम कर ली। उसने इतने थोड़े से जीवन में इटली को युरोपीय राष्ट्रों के मुक़ाबले में खड़ा कर दिया। आज का इटली गौरवमय अवश्य है, परन्तु उसमें जिन पाशविक विधानों को स्थान दिया गया है, इसे कोई भी सभ्य संसार मानने को बाध्य नहीं है। मेज़िनी और गेरीबाल्डी के इतिहासों में यद्यपि जोरजुल्म सभी हैं, परन्तु उसमें आदर्श और सभ्यता की रक्षा भी की गई है। मेज़िनी का जीवन, विकासवाद का उत्कृष्ट जीवन था। गेरीबाल्डी एक बहादुर और वीर सैनिक था। उसमें देशभक्ति की लगन थी, लेकिन वह नृशंस

अत्याचारों का विरोधी था। अविसीनिया में इटली के सिपाहियों ने और चीन में जापान के सिपाहियों ने तथा यहूदियों के प्रति हिटलर के सिपाहियों ने जो दुष्कृत्यों का प्रदर्शन संसार में कर डाला है, वे इतिहास के पृष्ठों में अमर कालिमा हैं।

मुसोलिनी का व्यक्तिगत जीवन

मुसोलिनी के जीवन में कई विशेषताएँ हैं। उसे अपने ऊपर आशातीत विश्वास है। वह सफलता को ही अपना उच्च जीवन समझता है। वह कई ऐसी भयंकर दुर्घटनाओं से बच गया है, जिसमें उसे अपने जीवन की तिलमात्र भी आशा नहीं थी। रणक्षेत्रों में गोलियों की बौछारों के बीच वह निर्भयतापूर्वक घूमता पाया गया; क्योंकि उसे विश्वास था कि मैं युद्धक्षेत्रों में विजय प्राप्त कर अपने देश को स्वतंत्र बनाऊँगा। उसने जीवन में मृत्यु और भय को स्थान ही नहीं दिया है।

मुसोलिनी सादगी जीवन व्यतीत करता है, उसके भोजन सामग्री में साधारण चीजें रहती हैं। सिगरेट और शराब को छूता भी नहीं। उसका भोजन ही उसके लिये शराब है। उसको मस्ताना और प्रफुल्लित बना देने वाली अगर दुनियाँ में कोई चीज है तो वह उसकी असीम देश भक्ति है। उसके जीवन का संगीत है, इटली का उद्धार! देश के दुश्मनों का नाश और उन्नति! वह कहता है मैं अपने लिये कुछ नहीं माँगता, मुझे संसार की किसी भी वस्तु में आनन्द नहीं, जितना कि आनन्द मुझे अपने देश को उन्नतिशील बना देने में है।

मुसोलिनी में कार्य-कुशलता अधिक है। वह कितनी लगन के साथ काम करता है, उससे पाठक शायद अनभिज्ञ होंगे। वह अपनी तमाम रातें इसी विचारों में गुजारता है कि उसकी अनुपस्थिति में भी इटली में किसी विदेशी और बाहरी शत्रुओं की धाक न जमने पावे। उसके सिद्धांतों का प्रचार दिनोंदिन बढ़कर संसार में प्रचलित हो जावे। वह कहता है, "मैंने अपने जीवन में सिर्फ एक पुस्तक का ही उपयोग किया है, और वही पुस्तक उसका मार्ग-प्रदर्शक है।"

यह असत्य नहीं कि तानाशाही के विरुद्ध संसार में जो आवाजें उठ रही हैं, वह सभ्यता और सिद्धांतों की पवित्रता की रक्षा के लिये ही उठाई जा रही हैं। फासिज्म के सिद्धांत अत्यन्त उच्चतम कोटि की गणना में गिने जा सकते हैं, अगर उन सैद्धांतिक विचारों में से अनैतिकता और बर्बरता के भीषण विचारों को निकाल दिया जावे। हिटलर और मुसोलिनी दोनों वर्तमान युग के एक महान् राष्ट्र-महारथी हैं, फिर भी राजनैतिक क्षेत्रों की जनता अधिक संदिग्ध है। अपने विरोधियों को फांसियों के तख्ते पर न लटकाकर, उनपर तर्क और कार्य-कुशलता से नैतिक और सैद्धांतिक विजय प्राप्त करना, अपने महान् आदर्श की रक्षा करना है।

आजतक इन तानाशाहों द्वारा जितनी कौमें लूटी गईं, बर्बाद की गईं और जितने अगणित निर्दोष व्यक्ति जीवित जलाए गए, भूने गए, गोलियों से उड़ाए गए और फाँसियों पर लटकाए गए, उनसे इस बात का परिचय तो अवश्य ही मिलता है कि इनके सिद्धांत और विचार संगीनों और तोप के गोलों से फैलाए गये हैं। एबिसीनिया सरीखे

स्वतंत्र और भोले-भाले देश को संगीनों से कुचल डालना और वहाँ की निर्दोष जनता को क्रोध की भभकती अग्नि में जला डालना पाशविकता का परिचय ही नहीं देता, वरन् उनके चरित्रों की निर्मलता और पवित्रता में बाधा उपस्थित कर देती है, जिन्हें पढ़कर हम राष्ट्र के सिपाही होने का पाठ पढ़ते हैं।

मुसोलिनी का आत्म-चरित्र और उसके आत्म-विकास की जहाँ हम प्रशंसा करते हैं, वहाँ उसके दुर्गुणों की भरपूर निन्दा भी करते हैं। एक नवीन मत-प्रचारकों को जितनी शक्ति, शान्ति और अहिंसा से मिल सकती है, उतनी एक जन-समूह पर संगीनों की नोकों से अपने सिद्धांत लादने में नहीं मिलती। आज जर्मनी की ९० फी सदी जनता आंतरिक हृदय से हिटलर की विरोधी है। इटली कभी भी तानाशाही को पसंद नहीं करती, परन्तु जनता आज उनकी चढ़ी हुई शक्तियों की गुलाम है। उसे भय है कि खुल्लमखुल्ला विरोध करने से फाँसी के तख्ते पर लटका दिए जावेंगे।

जहाँ विरोधी शक्तियों को अपने विचार प्रकट करने का भी पूर्ण अवसर नहीं दिया जाता हो, जहाँ विरोधी विद्रोही समझे जाते हों और जहाँ उनके विचारों को सुनना विद्रोह समझा जाता हो, वहाँ का राज्य-शासन, राजतंत्रवादी और गुलाम बनाने वाली होती है। जनता का बहुमत जिन विचारों को बिना किसी दबाव अथवा भय के मान लेने को तैयार हो, उसे सैद्धांतिक विजय कहते हैं, और यही विजय राष्ट्र और समाज को आदर्श और उन्नति के उच्च शिखर पर ले जाती है।

व्यक्तिगत प्रभाव राजनैतिक जीवन की पहिली सीढ़ी है! हिटलर

और मुसोलिनी दोनों प्रभावशाली हैं। उनके व्यक्तित्व में, रोष-क्रोध और हठवाद की अधिकता से उनकी राजनीति में स्वार्थपरता और दुष्टता का अधिक समावेश है। हजारों यहूदियों की आहों को न लेकर दोनों व्यक्ति, क्या अपने आदर्श गुणों से आशीर्वाद प्राप्तकर प्रेम और दया का विकास नहीं कर सक्ते थे? जो कुछ भी हो, प्रत्येक वस्तु के समझने के दृष्टिकोण अलग अलग होते हैं। दस जौहरी एक हीरे को परख पृथक-पृथक विचारों से करते हैं। हम तानाशाहों को अपने हृदय में केवल इसलिये स्थान देते हैं, हम उनकी प्रशंसा इसलिये करते हैं, कि उन्होंने अपने २ राष्ट्रों को अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली बनाने में अपनी तमाम शक्तियों को लगा दिया है। साथ ही उनके उन भावों की निन्दा करते हैं, जिनसे वे दूसरी जातियों को कुचलकर उनकी अपार सम्पत्ति के स्वामी बनना चाहते हैं।

किसी भी विजयी नेता का यह कर्तव्य हो जाता है, कि जिस देश को वह जीते, वहाँ गरीब जनता पर अपने सिपाहियों द्वारा होने वाले अत्याचारों को शीघ्र रोक दें। अगर उसे उस स्थान पर विरोधियों की शक्ति अधिक जान पड़े, तो उसे अपने सिद्धांत के प्रभाव से जीत लेना चाहिये। यही प्राचीन भारतीय राजनीति है।

मुसोलिनी और इटली

इस समय यूरोप में इटली का महत्व अद्वितीय है। जर्मनी ने इटली की शक्ति को परखकर ही मित्रता का नाता जोड़ा है। दोनों का एकीकरण आज संसार को उंगलियों पर नचा रहा है। इसके अतिरिक्त

इटली ने अन्य देशों से अपना राजनैतिक संबन्ध इतना दृढ कर लिया है कि यूरोप के दरबारों में इटली का ज़ोर अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा कहीं अधिक है। वलगेरिया की नाविक-संधि, कमालपाशा का गठ-जोड़न और रूस की व्यापारिक संधि ने इटली की शक्ति को वहुत कुछ आगे बढ़ाने में मदद की। अमेरिका और इङ्गलैंड की सहानुभूति पाने के लिये भी मुसोलिनी ने लम्बी-लम्बी रकमें खर्च कर उनसे सदा-सुहाग का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया था। मुसोलिनी की राजनीति और बुद्धिमत्ता का यह सर्वोत्तम उदाहरण है, कि एक निर्वल राष्ट्र आज संसार के राष्ट्रों में समानता का अधिकार प्राप्त करके उन्हीं की नाक में दम कर रहा है। राजनीतिक दृष्टिकोण से मुसोलिनी का चमत्कार एक अद्वितीय चमत्कार है। अल्पसंख्यकों को समाज और देश का कट्टर शत्रु समझ उनके नाश का प्रयत्न करना नैतिक-जीवन का महान् पतन है। आर्थिक दृष्टिकोण से मुसोलिनी ने इस ओर कम ध्यान दिया है। उसे सैनिक शक्ति बढ़ाने की जितनी फिक्र है; उतनी उसे आर्थिक दशा के सुधारने का ख्याल नहीं है। इसके लिये अधिक आंकड़े वताने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि, उसे कर्ज लेने की अधिक जरूरत पड़ती है। सन् १६३१ के लगभग उसने एक लम्बी रकम अमेरिका से मांगी थी, पर अमेरिका ने कर्ज देने से इन्कार कर दिया। सन् १९३२ में उसे १५ करोड़ रुपया कर्ज का अदा करना पड़ा था।

इटली की ३० फीसदी जनता मुसोलिनी के फासिस्ट से प्रेम रखती है और ६० फीसदी जनता निष्पक्ष है। वह किसी भी दल से विशेष प्रेम नहीं रखती। १० फीसदी जनता फासिस्ट मत के बिल्कुल

विरुद्ध है। वे मुसोलिनी को शैतान का अवतार समझते हैं।

यूरोप में जितने बड़े २ राजनैतिक आचार्य हुए हैं; उनमें मुसोलिनी का भी नाम लिया जा सक्ता है। फासिस्ट दल की स्थापना कर, साम्य-वादी दल को अपने पक्ष में मिलाकर, इटली को एक बलिष्ट राष्ट्र बनाने का श्रेय मुसोलिनी को ही प्राप्त है। मुसोलिनी एक शक्ति-शाली देश का स्वामी है। राजनैतिक चालों से उसने कई देशों को अपनी तरफ़ मिला लिया; और कई देश उसकी धमकियों में आकर उसके मित्र बन गए। धमकी देने में मुसोलिनी हिटलर से भी आगे है। विपक्षियों के लिये वह हरदम कहा करता है; "आओ इटली की तोपें तुम्हारे लिये तैयार हैं।" उनकी माँगें वह हरदम तोप के गोलों से उड़ा देता है। सैनिक तैयारी और फौजी सामान से वह संसार के सभी बलिष्ट राष्ट्रों को धमकियों का शिकार बनाता रहता है। विपक्षियों का दृष्टिकोण अब मुसोलिनी की धमकियों को समझने लगा है।

मुसोलिनी अपनी नीति और शतरंजी चालों से यूरोप के तमाम गरमदलों को अपनी ओर मिला लेनेके लिये बाध्य करता है। मुसोलिनी ने अपने फासिज्मवाद को इतना नम्र बना दिया है; कि फासिस्टों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जाती है। इटली स्वयं युद्ध के लिये तैयार नहीं है; परंतु वह संसार को लड़ने की चुनौती देता है। लोग मुसोलिनी के दिमाग का पता नहीं पा सक्ते, क्योंकि वह अपने विचारों को कई रूपों में बदल देता है। वह अपनी राजनीति में इतनी जल्दी परिवर्तन करता है; कि बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ उसपर आश्चर्य करते हैं। यह कोई दावे के साथ नहीं कह सक्ता कि मुसोलिनी कल

क्या करने वाला है। मुसोलिनी अपना जीवन इन्हीं चिंताओं में व्यतीत करता है कि वह अपने साम्राज्य का विस्तार फ्रांस और इंग्लैंड के मुकाबले में कैसे फैलावे ?

मुसोलिनी की फासिज्म-योजना

विश्व की उन विभूतियों में जिन्होंने अपने जीवन में एक अनोखी विशेषताएँ प्राप्त की हैं; और अपनी कल्पनाओं को सिद्धांत के रूप में बदल दिया है; उनमें मुसोलिनी की फासिज्म-योजना उसके दिमाग़ की एक गंभीर घटना है। यद्यपि म० गांधी, स्टेलिन, लेनिन और हिटलर भी नवीन युग की पुकार करने में सार्वभौम राजनीतिज्ञ-शास्त्रियों में गिने जाते हैं, और अपने त्याग बलिदान और तपस्या से संसार को गौरवान्वित किया है; तथापि मुसोलिनी एक असाधारण व्यक्ति है। आज सारा इटली उसके इशारे पर नाचने को तैयार है। इसका एकमात्र कारण यह है कि उसने अपनी एक असाधारण कल्पना को दृढ सिद्धांत बनाकर कार्यरूप में परिणित किया। हम मुसोलिनी की विचार-धारा पर ही उसके फासिज्म सिद्धांत का वर्णन करेंगे।

फासिज्म एक प्रगतिशील राजनीतिक सिद्धांत है। इसमें कल्पना की विचार-धारा ही मुख्य सिद्धांत है। यह कल्पना ऐतिहासिक विकासवाद पर अवलम्बित है। यह परिस्थिति को प्रभावित करता है। इसमें इसके विकासकर्त्ता ने इसमें सत्य, अहिंसा और शांति की विचार-धारा प्रवाहित की है। फिर भी यूरोप में इस "वाद" को

प्रचारित करने में अधर्म, झूठ और हिंसा के क्रूर और कुटिल मार्गों को ग्रहण किया गया है। आध्यात्मिकता को ध्वस कर भौतिक प्रणाली को विशिष्ट स्थान देकर क्षणिक कल्पना को ही सिद्धांत बनाया गया है। लेकिन यह दावे के साथ नहीं कहा जा सक्ता कि मुसोलिनी या हिटलर के बाद इटली और जर्मनी की राजनीतिक दशा इसी तरह प्रभावशाली रहेगी या नहीं। आतंककारी राजनीति के बादल जो आज उठे हैं और जिसके बल पर हिटलर मेमेल, जेकोस्लाविया और अस्ट्रिया आदि को अपने पन्जे में फांस रखा है, उससे यह अर्थ नहीं कि ये स्वतन्त्र देश, सदा गुलाम ही रहेंगे। इनमें भी कभी फिर स्वतंत्रता की लहर उठेगी, और ये आज़ाद होंगे।

भौतिक राजतंत्र-प्रणाली में मानवता के साधनों को बहुत कम स्थान मिलता है। सत्यता और व्यावहारिक मानव-जीवन के सिद्धांत निर्जीव हो जाते हैं। राजतंत्र के आचार्य इसे महान् प्रलयकाल कहते हैं! एक व्यक्ति सार्वभौम का स्वप्न देखता है, और जब वह उसे अपने कठोर-नियंत्रण से कार्यरूप में परिणित करता है, तब महान् संकट का समय उपस्थित हो जाता है। उस समय यदि विवेक और विशेष बुद्धि से कार्य न किया गया, तो आपस में लोहा बजने के सिवाय कोई दूसरा उपाय ही नहीं रह जाता। फासिज्मवाद के उस अंग से हम अवश्य सहमत हैं, जिसमें राष्ट्रीय-संगठन, शिक्षा, साहित्य और मानव-जीवन के आध्यात्मिक उन्नति के उच्चतम विचारों का समावेश है।

फासिज्मवाद का सिद्धांत एक ही व्यक्ति के समय २ के विचारों का संगठनमात्र है। प्रायः राजनीतिक आचार्यों का यह भी मत होता

जारहा है; कि फासिज्म आध्यात्मिक-जीवन का एक विकास है, स्वार्थपरता और भौतिकवाद को नष्ट कर मानवमात्र को वह एक नवीन सूत्र में बाँधता है। इसका निर्माण सिर्फ कर्तव्य पर रक्खा गया है। इस तरह यह आध्यात्मिक जीवन को विकसित करता है। १९ वीं सदी की संकटापन्न स्थिति में उसने जन्म लिया, और मानव-समाज के स्वतंत्र विचारों का एकीकरण करता हुआ आगे बढ़ रहा है। हो सक्ता है, इसमें आध्यात्मवाद किसी तरह छिपा हुआ हो, लेकिन मुसोलिनी की यह आध्यात्मिक घोषणा, विश्व-शांति की सत्ता नष्ट करने में अग्रगामी सिद्ध होती है।

हाँ, राष्ट्रीय दृष्टि से फासिज्म, मानव-जाति को कर्तव्य-परायणता और स्वावलम्बन की शिक्षा देता है। वह तमाम शक्तियों को एकाग्र करने और आगे बढ़ने का आदेश देता है। लेकिन फासिज्म का राष्ट्रीय-जीवन, उच्च आदर्शों और निरंकुश-व्यवहारों को समानरूप से देखता है। मुसोलिनी की कल्पना है, कि युद्ध ही जीवन है। लेकिन उसने युद्ध की व्याख्याएँ नहीं कीं। उसकी इस कल्पना से यह सिद्ध होता है, कि युद्ध सदा होते ही रहें और इटली उसमें विजयी होता रहे।

फासिज्म-कल्पनानुसार इसका ऐतिहासिक पहलू मनुष्य को परिवार के सूत्र में गुम्फित करता है। इससे समाज, राष्ट्र और विश्व-इतिहास की परिकल्पना होती है। यही कारण है कि इन तमाम क्षेत्रों में मनुष्य का अलग अस्तित्व है। इसकी विभिन्न-विशेषता है। इतिहास के बाहर मनुष्य का कोई स्थान नहीं—उसकी कोई हस्ती नहीं। फलतः फासिज्म १८ वीं सदी की भौतिक व्यक्ति-विशेषता का घोर विरोधी

है. यह समस्त खुराफ़ाती विचारों का कट्टर दुश्मन है। १८ वीं सदी के अर्थशास्त्र-विशारदों की सुख-सम्भावनाओं में उसका कत्तई विश्वास नहीं है। वह इसे स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं कि विश्व क्रमशः कल्याण की ओर बढ़ता हुआ निकट-भविष्य में बाधाओं और अभावों पर विजय प्राप्त कर सुखी बन सकेगा। यह तो उस धारणा का, जिसके अनुसार विश्व-विकास का सिद्धांत प्रतिपादित होता है, विरोधी है। राजनीति में फासिज्म का उद्देश यथार्थता से है। व्यवहार में इसका सबंध उन ऐतिहासिक समस्याओं से है, जो प्राकृतिक हैं, और उनका निराकरण उन्हीं में निहित है। केवल सत्यता के दायरे में प्रवेश करने से तथा उसके साधनों पर अधिकार करने के बाद ही मनुष्य दूसरे मनुष्य पर एवं प्रकृति पर अधिकार जमा सक्ता है।

उपरोक्त पंक्तियों की महत्ता उस समय थी, जब फासिज्मवाद का जन्म हुआ था, और वह पालने में झूल रहा था। उस समय, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सिद्धांतों के उन्नतिशील विचारों का संसार में प्रदर्शन किया गया था। संसार ने इस नवीन शासन-रचना-प्रणाली को आश्चर्य-जनक दृष्टि से देखा। फासिज्म का नित-नवीन ढंग से आगे बढ़ना आध्यात्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन भले न हो, किन्तु व्यक्तिगत सिद्धांतों का प्रचार अवश्य है। वर्तमान् फासिज्मवाद राष्ट्रीय जागरण नहीं, परंतु सैनिक जागरण और युद्ध की घोषणामात्र हैं। इसमें उपरोक्त पंक्तियों के लेखक ने फासिज्म-कल्पना का वर्णन जिस सुन्दरता से किया है, वह उसके जन्म समय की अद्भुत सुंदरता थी, परन्तु वह आज नष्ट हो गई।

अध्यात्मवाद, विरोधी जन-समूह को, सिद्धांतों से जीतने के लिये विवश करता है। मुसोलिनी का आध्यात्मवाद तलवार और आतंक पर निर्भर करता है। वह एक ऐसे व्यक्ति का साथी है, जो आतंक की महामूर्ति है, और जिसके भय से संसार के राजतंत्र और प्रजातंत्र दोनों खतरे में पड़ गए। जब यह खबरें समाचारपत्रों में निकलती हैं कि अबीसिनियन पादरी सिर्फ इसलिये तेल के गरम कड़ाहों में भून डाले गए कि वे मुसोलिनी के नवीन युग के विरोधी थे। सत्य एवं न्याय की पुकार करने वालों को इस तरह की यंत्रणाओं द्वारा बध करना हो यदि आध्यात्मवाद का सिद्धान्त है, तो यह कहना होगा कि ऐसा आध्यात्मवाद सिर्फ एक क्रूर-कल्पना का नवीन ऐतिहासिक दृश्य है। सदियों से ऐसे दृश्य उपस्थित होते चले आए हैं। रोम, अमेरिका—इंग्लैण्ड—जर्मनी और फ्रांस में जीवित स्त्री पुरुषों को जला देने तथा तड़फा-तड़फा कर मार डालने की क्रियायें, जिसे आज समस्त सभ्य संसार जघन्य कार्य बतलाता है, अब भी प्रचलित हैं। इस नरमेध-प्रथा का अंत, मुसोलिनी और हिटलर दोनों कर सकते थे, और तभी उनके आध्यात्मवाद का स्पष्टीकरण संसार में होता। ऐसी संहार-नीति के प्राङ्गण में मानव-समाज का हित और उसका संरक्षण कहां तक निर्दिष्ट है, यह कहना असंभव है। फासिज्म के जन्म से लेकर आज तक लाखों व्यक्ति मौत के घाट उतारे जा चुके हैं। इन ५ वर्षों में यूरोप के अनेकों प्रतिभाशाली और आध्यात्मविद्या के आचार्य मृत्यु के घाट उतार दिये गये, जिससे विश्व-इतिहास क्रूर और कलंकपूर्ण गाथाओं का एक पोथा बनता जा रहा है।

वास्तविक और सत्य सिद्धांत स्वयं मनुष्य के ऊपर प्रभाव डालते हैं। प्रभाव ही प्रकृति है। प्रभाव ही प्रकृति को अपनी ओर झुका लेता है। प्रभाव ही विरोधियों को अपनी तरफ खींच लेता है। प्रभावशाली सिद्धांत ही अमर सिद्धांत होते हैं। प्राचीन सिद्धांत ही आज नवीन युग को जन्म दे रहे हैं। भले ही उनपर नवीनता का मुलम्मा चढ़ाया गया हो लेकिन तर्क की कसौटी पर वे नवीन नहीं ठहराए जा सकते। इसके लिये भारत का आध्यात्मिक-काल सर्वोत्तम उदारण है। आध्यात्म-सृष्टि आज भी भारत में है। आज जिस सैनिक व्यवस्था और नर-संहार की योजना तैयार की जा रही है, वह भारत में आज से ५००० हज़ार वर्ष पहिले एक दूसरे रूप में थी। सैनिक-संगठन की व्यवस्था का आदर्श जो उस समय भारतवर्ष में थी, उतना उच्चतम आदर्श न तो हिटलर उपस्थित कर सकते हैं और न मुसोलिनी।

फासिजम का अध्ययन कीजिए। उसमें आपको खूँरेजी, जुल्म और सख्ती के सिद्धांत ही मिलेंगे। उसमें मनुष्यता के स्वतंत्र विचारों को पीस डाला गया है। यहाँ तक प्रतिबंध लगाए गए हैं कि संपादक सिर्फ फासिज्म का संपादन करे अन्यथा उनकी कलम रोक दी जावेगी, और वे देश-द्रोही समझे जावेंगे। ऐसे साम्राज्य में जहाँ लिखने-बोलने की स्वतंत्रता नहीं है, ऐसा कौन सा राजनीतिक आचार्य होगा जो इसे विश्व-शांति के लिये, मानव-समाज के उद्धार के लिये और स्वाधीनता के रक्षार्थ विश्व-व्यापी सिद्धांत मानेगा। दुनियाँ इस तरफ से चौकन्नी हो उठी, निर्बल राष्ट्रों का जीवन खतरे में हो गया। शान्ति हवा में

उड़ गई। सिर्फ तलवारों की झंकार, तोपों की गड़गड़ाहट और आतंकवाद का धुआँ, फासिज्मवाद के सिद्धांतों में कूट-कूट कर भर दिया गया है।

फासिज्म विशुद्ध जनतंत्रवाद है, यह तभी माना जा सकता है, जब फासिज्म विरोधी सिद्धांतों और तत्त्वों को सुना जाय। समाचार पत्रों को स्वतंत्र लेख लिखने की अनुमति हो और स्वतंत्रतापूर्वक भाषण देने के प्रतिबंध उठा लिये जावें। दबाव और आतंक की जगह सत्य और न्यायप्रियता को स्थान देकर जबतक अल्पसंख्यक जातियों की रक्षा का प्रश्न संसार के सामने न रखा जावेगा, तबतक संसार के आदर्श-क्षेत्रों में उसे स्थान ही नहीं मिलेगा। यह घोषणा तो मुसोलिनी और हिटलर कई बार कर चुके हैं कि मानवता ही सर्वस्व है और समानता, रक्षा और शांति उसके मुख्य उद्देश्य हैं। जहाँ जनतंत्र-प्रणाली में बहुमत-विशेष राष्ट्र से संबंध रखता है, वहाँ फासिज्म बहुमत की ओट में व्यक्ति-विशेष को प्रधानता देता ह। मुसोलिनी और हिटलर की पूजा उसके विशेष व्यक्तितत्व के ही कारण होती है। जहाँ यह घोपित किया जाता है कि हमारे सिद्धांतों में आत्म-जागरण और व्यवहारिकता भरी हुई है, तो उसका रूप दूसरी ओर तलवारों की झंकारों में पाया जाता है। मानव-जीवन के अधिकारों की रक्षा का प्रश्न अगर हिटलर और मुसोलिनी के विचारों में होता, तो लाखों यहूदियों की सम्पत्ति और उनकी जाति को मिटा देने के लिये दोनों महान् व्यक्तियों की तलवारें म्यानों से बाहर न होतीं।

मुसोलिनी का फासिस्ट, व्यक्ति-विशेष की जोरदार आवाज है।

इसमें मानव-जीवन की समस्त बौद्धिक-शक्तियों का समावेश हो सकता है, अगर उसमें से निरंकुशता के भिन्न-भिन्न रूपों को नष्ट कर दिया जावे। किसी भी देश में बसने वाली भिन्न २ जातियाँ, जो सदियों से वहाँ रहती आई हैं और जिन्होंने समय-समय पर देश के लिये अद्भुत त्याग और तपस्याएँ की हैं, उन्हें भी राष्ट्र का जीवन समझना चाहिए। परन्तु फासिस्ट, विशुद्ध एक रक्त-मांस का पुतला चाहता है। इटली में इटालियन और जर्मनी में नाजी ही रह सकेंगे; उनका यह सिद्धान्त विश्व-आदर्श, शांति, व्यवहारिकता और नियम-विधायकता को नष्ट कर देता है। इसे आध्यात्मवाद कहना एक भारी भूल है। आध्यात्मवाद समस्त मानव-समाज को विश्व-प्रेम के एक सूत्र में बाँधता है। मुसोलिनी प्रभावशाली व्यक्ति है; उसका फासिस्ट उसके निजी विचार हैं। उसने राष्ट्र को शक्तिशाली बनाया है; उसने संसार को लोहा लेने की धमकियाँ दी हैं; यह सिर्फ उसकी आत्मा का साहस-मात्र है।

टर्की का उज्ज्वल तारा—

मुस्तफ़ा कमालपाशा

उस दिन कमाल ने अपनी प्रेयसी लतीफा हानूम से कहा:—"मैं तब तक शादी नहीं करूँगा; जब तक देश आज़ाद न होगा"—

लतीफा हानूम ने कहा—"अच्छा मैं भी कसम खाती हूँ।" बस! उसी दिन से कमालपाशा अपने कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ होगया!—

उसने कहा—"देशभक्ति का नशा मेरी अप्रियतम शराब होगी। मैदाने-जंग मेरा मखमली बिस्तर होगा।"

मुस्तफ़ा कमालपाशा

मुस्तफ़ा कमालपाशा को एशिआई सितारा कहने में कोई अत्युक्ति न होगी। यह सितारा सन् १८८१ ई० में सालोनिका में उदय हुआ और सन् १९३९ के जनवरी मास में अस्त हो गया। एशिया के इस देदीप्यमान सितारे की आभा समस्त एशियाखंड में फैल गई। चीन और भारत सरीखे प्रधान देशों में कमाल के गुणगान होने लगे।

कमाल ने वास्तव में कमाल ही किया। दुनियाँ देखती ही रही और उसने पाखंड, अन्धविश्वास तथा रूढ़ियों की जड़ खोद डाली। एशिया में स्वतन्त्रता का सूर्य टर्की से चमका। कमालपाशा ने टर्की को आज़ाद कर समस्त एशिया का मस्तक ऊँचा कर दिया। कमाल का जन्म एक साधारण वंश में हुआ था। इनके पिता मामूली

वेतन पर एक क्लर्क थे। उस समय टर्की में पर्याप्त शिक्षा का प्रचार नहीं था। कमाल की माता को अक्षर-ज्ञान न था। कमाल के पिता जो कमाते थे, इसी से घर का खर्च चलता था। कभी कभी आर्थिक कठिनाइयाँ उन्हें ऊपरी कार्य करने को बाध्य कर देती थीं। मुस्तफा के जन्म के समय उनकी माता की आयु तीस वर्ष थी। उनका विचार धार्मिक होने के कारण वे चाहती थीं कि मेरा कमाल अपने धर्म का एक महान् पुरुष हो। वह उसे मौलवी बनाने की बड़ी उत्कट इच्छा रखती थीं, परन्तु कमाल का मन पढ़ने-लिखने में बिल्कुल नहीं लगा। कमाल की आन्तरिक इच्छा कुछ और ही थी। उसे सिपाही बनने की लालसा थी। इसलिये उसने माता की इच्छा के विरुद्ध सैनिक स्कूल में पढ़ना आरम्भ कर दिया। कमाल स्कूल में एक होनहार छात्र सिद्ध हुए। घोड़े की सवारी और अस्त्र-शस्त्र संचालन में कमाल ने कमाल कर दिखाया। उनको इस निपुणता पर उन्हें कमाल की उपाधि स्कूल से ही मिली। तभी से ये कमालपाशा कहलाने लगे। बाद में अतातुर्क कमाल के नाम से मशहूर हुए।

कमाल का बचपन

बचपन में कमाल का सौन्दर्य आकर्षक था। प्रकृति ने उनको एक अनुपम सुन्दरता प्रदान की थी। १४ वर्ष की आयु में ही एक पड़ोस की लड़की से उनका प्रेम हो गया। अपनी इस छोटी सी आयु में वे सौन्दर्य के उपासक बन गये। इसके बाद वे मोनस्तीर के बड़े सैनिक स्कूल में भरती हो गए। इसी समय इन्हें उपन्यास पढ़ने का शौक

हुआ। फ्रांसिसी लेखकों की रचनाएँ आपको अधिक पसन्द आने लगीं। वाल्टेयर की और रूसी किताबें भी आप अधिक पढ़ते थे। जान स्टुआर्ट मिल के अर्थशास्त्र का भी इन्होंने अच्छा अध्ययन किया था। उस जमाने में इन किताबों का पढ़ना टर्की में जुर्म था। उनकी जप्ती ही ने कमाल का हृदय उस ओर आकर्षित किया। कमाल ने उन जब्त-शुदा पुस्तकों को मँगाया, और पढ़ डाला। इन पुस्तकों में न मालूम कौन सा जादू था, जिसने कमाल के हृदय को एक विशाल विद्या-मंदिर बना डाला। लेकिन उनका प्रारम्भिक जीवन इतना विद्या-व्यासनी नहीं था।

२० की आयु में कमाल ने कुछ उपद्रव करना शुरू किया; जिनमें वेश्या-गमन प्रमुख था। रात रात भर जुआ खेलना और शराब पीना, एक साधारण सी बात थी। शराब के इतने अभ्यस्त हो गये थे कि वह अन्तिम समय तक उनसे अलग न हो सकी। वेश्या-गमन करना, काम-पिपासा शान्त करने की एक साधना मात्र थी! वे किसी भी वेश्या को हृदय से प्रेम नहीं करते थे।

लतीफ़ा-हानूम

एक सुन्दर युवती थी; कमाल उसके उपासक थे और वह कमाल की उपासक थी। दोनों का प्रेम-सम्बन्ध उत्कृष्ट था। हानूम ने कहा—"कमाल! मैं तुमसे शादी कर सकती हूँ; लेकिन एक बाँदी की तरह तुम्हारे पास नहीं रह सकती।" कमाल ने उत्तर दिया—"शायद तुम समझती हो; शादी उसी को कहते हैं; जो मौलवी आकर करा देता

है । परन्तु मैंने इस बात की शपथ ली है कि जबतक मैं टर्की को आज़ाद नहीं कर लूँगा; विवाह कदापि न करूँगा।" लतीफ़ा हानूम ने उत्तर दिया—"मैंने भी यही शपथ ली है।" अन्त में हानूम कमाल की प्रिय पत्नी बनी । लेकिन कमाल ने देखा; कि हानूम के प्रेम में वह अपने सिद्धांतों और उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सकता। वे उसके प्रेम-मद में इतने लिप्त हो गए कि अगर वे शीघ्र ही इस बेहोशी से न सँभलते, तो आज टर्की इस अवस्था में न दिखलाई देता जिसमें आज है। लतीफ़ा हानूम के प्रेम-मिश्रित दृष्टि को उन्होंने घृणा-पूर्वक ठुकरा दिया। उसे तलाक़ देकर वे कर्तव्य-पथ पर अग्रसर हुए। पहुँचे कहाँ ? जहाँ तोपों की गड़गड़ाहट थी । हज़ारों दुश्मन टर्की को निगलने के लिये मैदानेजंग में खड़े थे । प्रेम के सरोवर में डुबकी लगा, कमाल सरफरोशी के समुद्र में जाकर तैरने लगे । सचमुच वह कमाल था । कहाँ प्रेम की जंजीरों से जकड़ा हुआ हृदय, और कहाँ सरफरोशी की तमन्ना। कितना आश्चर्यजनक परिवर्तन था । दोनों सिद्धांत एक दूसरे के विपरीत थे । एक तरफ फूलों की महक, इत्रों की खुशबू और सुन्दरियों का जमघट था, तो दूसरी तरफ था, "सर हथेली पर"।

कमाल ने दूसरे सिद्धांत को पसन्द किया। इसे कहते हैं देश प्रेम ! कमाल मैदानेजंग की ओर बढ़ा जा रहा था और लतीफ़ा-हनूम व्याकुलता से अधीर होकर विलाप कर रही थी, परन्तु कमाल ने उस ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया। प्रति दिन नयी २ सुन्दरियों के प्रेम में आबद्ध होने पर भी, अपना हृदय किसी को पूर्णतया दे नहीं डाला था। यदि दे डाला था तो केवल अपनी मातृभूमि टर्की को । इससे पाठकों

को यह न समझ लेना चाहिये कि कमाल औरतों को कोई चीज नहीं समझता था । वह औरतों की इज़्ज़त करना जानता था; और इतनी अधिक कि नारी जाति की स्वतंत्रता के लिये उसने इस्लाम के प्राचीन पर्दे की प्रथा को उखाड़ कर फेंक दिया था। नारियों के प्रति उनका हृदय स्वच्छ था, वे नारी जाति के अधिकारों की रक्षा करना जानते थे । उन्होंने टर्की की राजनीति में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर ही अधिकार दिया है ।

कमाल में जहां शराब और व्यभिचार की मात्रा अधिक थी, वहाँ देश-प्रेम उससे भी अधिक था। कमाल सचमुच काम-वासना के गुलाम नहीं थे । जब-जब देश सेवा के लिये उनकी आवश्यक्ता पड़ी वह तत्क्षण आगे आया। कमाल ने कुछ अनाथ कन्याओं का पालन भी पुत्रियों की तरह किया था। सैनिक कालेज में पढ़ते समय कमाल ने अपना संबंध एक क्रांतिकारी संस्था से स्थापित कर लिया; जिसका नाम था 'वतन'। कालेज की पढाई छोड़कर, जब वे बाहर निकले; तो उसी समय, वे गिरफ्तार कर इस्तम्बोल के कैदखाने में बन्द कर दिए गए। उस समय टर्की में घोर अत्याचारों का ज़माना था । एक ओर सुलतान का दमन-रूपी चक्र चल रहा था तो दूसरी तरफ विदेशियों के गुप्त षडयंत्र चल रहे थे । जनता कमाल के साथ थी और सुल्तान के अत्याचारों का पूर्ण विरोध कर रही थी। क्रांतिकारियों का संगठन हो चुका था। जेल से छूटने पर कमाल सेना में फिर भर्ती हो गए, और क्रांतिकरी संगठन छिपे-छिपे करते रहे। कुछ दिन बाद वे एक सेना की टुकड़ी के साथ सालोनिका को भेज दिये गये। यहाँ भी "प्रगति" नाम की एक क्रांति-

कारी संस्था थी। कमाल जब यहाँ पहुँचे, तो संस्था की ओर से उन्हें उसमें सम्मिलित होने का निमन्त्रण भेजा गया। कमाल इस संस्था में भी गुप्त रूप से भर्ती हो गए।

अनवर पाशा ने सुल्तान अब्दुल हमीद के समर्थकों को दबाकर जब अपनी सरकार कायम की, इसी समय बालकान राज्यों में फूट हो गई। अनवर पाशा ने कमाल के सहयोग से एड्रियानोपुल पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। एड्रियानोपुल को जीतने के बाद अनवरपाशा ने टर्की की सेना का पुनर्सङ्गठन किया। सैनिकों को अच्छी शिक्षा देने के लिये जर्मन अफसरों को नियुक्त किया। कमाल पाशा ने अनवर पाशा के इस कार्य का ज़ोरों से विरोध किया। कमाल चाहते थे कि टर्किश सेना पर जर्मनी का अधिकार नहीं रहना चाहिये। टर्की को अपना प्रबन्ध स्वयं करना चाहिये। कमालपाशा के इस विरोध की अनवरपाशा ने कोई परवाह नहीं की। इसी समय यूरोप में जर्मनी और मित्र राष्ट्रों में लोहा बजने लगा। अनवर पाशा ने जर्मनी का साथ दिया। स्वयं कमाल भी जर्मन सेनापति वान सैन्डर्स के अधीनस्थ कार्य करने के लिये नियुक्त कर दिए गए। अंग्रेजों ने गोलीपोली के प्रायद्वीप पर आक्रमण किया। यदि अंग्रेज लोग इस आक्रमण में सफल हो जाते तो टर्की सदा के लिये मित्रराष्ट्रों के हाथों में चला जाता और कुस्तुन्तुनिया पर ब्रिटिश-साम्राज्य की विजय-पताका फहराती दृष्टिगोचर होती। इस भीषण अवसर पर भी कमाल ने कमाल ही कर दिखाया। अपने सेनापति की बिना स्वीकृति लिये ही अंग्रेजों के मुकाबले में अपनी सेना बढ़ा दी। कमाल एक छोटी-सी फौज को लेकर दुश्मनों के मुकाबले में

आगे बढ़े। दूसरी तरफ अंग्रेज़ों की विशाल सेना डटी थी। कमाल ने अपने आदेशों से सेना में एक विलक्षण स्फूर्ति डाल दी। इस युद्ध में मुस्तफ़ा-कमाल ने जिस वीरता और अकथ परिश्रम का परिचय दिया, उसे देखकर अंग्रेजों की अपार सेना के छक्के छूट गये। कमाल की निर्भयता ने अंग्रेजों को आश्चर्यचकित कर दिया। शत्रुओं की हज़ारों चलती हुई गोलियों के बीच में कमाल बड़ी दिलेरी और बहादुरी के साथ अपनी टुकड़ी को उत्साह दिलाते आगे बढ़ रहे थे। टर्किश सिपाही कमाल के संकेतों पर अपनी जान हथेली पर लिये झूम रहे थे। कमाल की मुट्ठी भर सेना ने अंग्रेजों को पीछे हटा दिया। यह विजय कमाल की अपूर्व विजय थी। सेनापति की आज्ञा न लेने पर भी, अपनी फ़ौज को बढ़ा कर मैदान सर कर लेने में जो दूरदर्शिता का परिचय दिया, उससे समस्त जनता के हृदय में कमाल ने घर बना लिया। हर एक की जिह्वा पर कमाल की तारीफ़ थी। अगर कमाल अपनी सेना को आगे बढ़ाने में ज़रा भी विलम्ब करता; तो टर्की पर अंग्रेजों का अधिकार होने में कोई सन्देह नहीं था। कमाल पहले ही से परिस्थित के अध्ययन करने में लगा हुआ था। उसका अनुमान ठीक निकला; और शीघ्र ही बिना किसी विलम्ब के उसने अपनी टुकड़ी को बढ़ने की आज्ञा दे दी। कमाल की यह स्वाभाविक प्रकृति थी कि वह जिस कार्य के करने का एकबार निश्चय कर लेता था, उसे वह बिना आगा-पीछा सोचे कर डालने में अपनी पूरी शक्ति लगा देता था। यही आत्मिक-शक्ति उसके विजय का महान् कारण थी।

परंतु परिणाम क्या हुआ? इस वीरता और अकथनीय साहस

के पुरस्कार में अनवरपाशा ने उसे काकेशश के जंगली प्रदेश में भेज दिया। अनवरपाशा को परिस्थिति का अध्ययन अच्छी तरह हो चुका था। उसे कमाल का बढ़ता सौरभ आँखों में खटकने लगा। इसीलिये उसने उसे कुस्तुन्तुनियाँ से हटा दिया। परंतु कमाल इस परिवर्तन से घबराया नहीं। वह दूने उत्साह के साथ काकेशश जा पहुँचा। यहाँ सैनिक-राज्यवस्था थी। सिपाही चोरी, जुआ और घूसखोरी में मस्त हो रहे थे। जिस समय कमाल यहाँ पहुँचा, इन सिपाहियों ने कमाल को अपनी ओर मिला लेने का लम्बा लालच दिया। पर कमाल उन सिपाहियों के फन्दे में नहीं आया। उसने सिपाहियों को दृढ़ चेतावनी दे दी, कि अगर कोई घूस लेगा, तो उसे फाँसी पर लटका दिया जावेगा। कुछ दिन पीछे एक जर्मन अफसर कमाल के पास भेजा गया। यद्यपि कमाल उसके नीचे ही काम करता था, तथापि शासन-व्यवस्था कमाल के आदेशानुसार हो रही थी। तमाम अधिकारी-वर्ग कमाल की सख्ती से असन्तुष्ट थे। दो-ही दिन में जुआ और चोरी का नाम मिटा दिया गया। चालाक और स्वार्थी अधिकारी कमाल के नाम से कांपने लगे। इस जर्मन अफ़सर ने कमाल का प्रभाव देखकर उसे अपनी ओर मिलाना चाहा। कमाल के पास उसने कुछ सोने के सिक्के उपहारस्वरूप भेजे, परंतु कमाल ने इस उपहार को ठुकरा दिया।

काकेशश में कमाल कुछ अस्वस्थ हो गये जिससे उन्हें घर चले आना पड़ा। घर आकर उन्होंने अनवरपाशा के विरुद्ध प्रकटरूप में प्रचार करना आरम्भ कर दिया। अनवर ने कमाल को अब जर्मनी भेज दिया। जर्मनी से आने पर वे सीरिया में रख दिये गए। सीरिया में

रहते हुए, वे अंग्रेजों से एक बार फिर लड़े। इस बार के हमले में यद्यपि कमाल अस्वस्थ थे, तथापि मैदाने-जंग में वे दूनी स्फूर्ति और उत्साह से काम कर रहे थे। परन्तु इसी बीच में युद्ध बंद हो गया और संधि हो गई। विजयी ब्रिटेन ने सुलतान पर अपना काफी प्रभुत्व जमा लिया था। अतः टर्किश पार्लियामेंट को भंगकर कमाल को समसुन भिजवा दिया। समसुन में रहते हुए कमाल अपने सिद्धांतों का प्रचार अधिक जोरों से करने लगे। इसके बाद वे सेना से निकाल दिए गए। यह अवसर भी कमाल के लिये अच्छा था। वे अपनी राजनीति को फैलाने के लिये अब बिलकुल स्वतंत्र हो गए।

अपने पैरों पर खड़े होकर गाँव-गाँव और घर-घर में आज़ादी का सन्देश देने लगे। जहाँ जहाँ कमाल गए, वहीं पर जनता ने उनके सुन्दर विचारों का खूब स्वागत किया। सिवास में एक राजनैतिक कान्फ्रेंस हुई जिसके अध्यक्ष कमाल ही बनाए गए। इस कान्फ्रेंस में एक नई सरकार बनाई गई, जो केन्द्रीय सरकार से पृथक थी। इस नवीन सरकार के स्थापित होते ही सुलतान ने भय से घबड़ाकर पुरानी पार्लियामेंट को तोड़ दी और सार्वजनिक चुनाव की घोषणा की। इस चुनाव में कमालपाशा तो विजयी हुए ही, साथ ही साथ इनके पक्ष के मेम्बर अधिक संख्या में पार्लियामेन्ट में जा घुसे। परन्तु शीघ्र ही कमाल और उनके साथियों में एक थोड़ी सी बात पर भीषण मतभेद हो गया। कमाल चाहते थे कि पार्लियामेंट की बैठक कुस्तुन्तुनियाँ में न होकर अंगोरा में की जाय, क्योंकि किस्तुन्तुनियाँ में अंग्रेजों का दौर दौरा अधिक था।

यूनानी जहाजों पर चढ़कर भाग निकले और कमाल ने इनमी पर अपना अधिकार कर लिया। सिपाहियों ने बहुत से यूनानी सिपाहियों का वध कर डाला। कमाल की इस विजय से विदेशी लोग चौकन्ने हो उठे। अंग्रेज़ भी कमाल का कमाल देखकर दंग रह गए। अब कमाल-पाशा को सिर्फ एक काम करना बाकी रह गया, और वह कार्य था, विदेशियों की फौज़ों को टर्की से बाहर निकाल देना। कमाल कुस्तुन्तुनियाँ की तरफ रवाना हुए। मित्र-राष्ट्रों की सेना के आगे तुर्की सेना नहीं के बराबर थी। कमाल अच्छी तरह से जानता था, कि लड़ने से बुरी तरह पराजित होना पड़ेगा। कमाल ने विलक्षण बुद्धि से काम लिया। कमाल ने अपनी पैदल सेना को हुक्म दिया, कि मित्र-भाव से बंदूकों को पीछे किए हुए, मित्र राष्ट्रों की सेना पर हमला करो। तुर्की-सिपाही अपनी बंदूकों को पीछे किए हुए आगे बढ़े। अंग्रेज़ सेनापति इस विचित्रता को न समझ सका। उसने सोचा कि यदि आक्रमण ही होता, तो दनादन गोलियाँ चलतीं। लेकिन टर्किश-सिपाही बड़ी ही खामोशी के साथ आगे बढ़ रहे थे। बंदूक व तोपों का एक भी शब्द नहीं था। वह यह सब दृश्य देखता ही रहा और कुस्तुन्तुनियाँ में कमाल की सेना घुस पड़ी। अब अंग्रेज़ों ने यह बला सिर पर मोल लेनी उचित नहीं समझी और अपने एक प्रतिनिधि को समझौते के लिये कमाल के पास भेज दिया।

वास्तव में कमाल की युक्ति ने कमाल कर दिखाया। टर्की के भाग्य का पूर्ण निपटारा हो गया। टर्की के साथ जो समझौता हुआ, उसमें टर्की को पूर्ण-स्वतंत्रता देकर विदेशियों ने अपने हस्तक्षेप उठा लिये। इस विजय के बाद कमालपाशा का ध्यान अपनी घरू-दशाओं पर गया।

सबसे पहिला उनका उद्देश यह था, कि सुल्तान के पद को नष्ट कर दिया जावे। परंतु लोकमत चाहता था कि सुल्तान को वैधानिक नरेश का पद दिया जावे और कमालपाशा उसके प्रधान मंत्री रहें। पर कमालपाशा को यह नीति पसन्द नहीं थी। वे नरेश शब्द को रखना ही नहीं चाहते थे। कमाल ने व्यवस्थापिक सभा में यह प्रस्ताव रखा, कि सुलतान का पद खलीफा के पद से अलग कर दिया जावे। इस प्रस्ताव का जोरों से विरोध किया गया, परंतु अंत में पास हो ही गया। इसके बाद कमाल ने सुल्तान के स्वार्थी मंत्रियों को निकालने का एक अच्छा उपाय सोच निकाला।

एक दिन कमाल ने एक दावत में सभी मंत्रियों को बुलाया। और हद से ज्यादा शराब पिलाकर उन्हें स्तीफा देने को बाध्य किया। मंत्रिमंडल को साफ़ कर राजनीति का सारा मैदान अपने अधिकार में कर लिया। इसी समय कमाल ने प्रजातंत्र की घोषणा की और स्वयं प्रजा॰तंत्र के पहिले अध्यक्ष बने। ३ मार्च सन् १९२४ को कमालपाशा ने अपनी कैबिनेट में खलीफा का पद तोड़ने का एक बिल उपस्थित किया, जो बहुमत से पास हो गया। बिल के पास होते ही खलीफ़ा अपनी जान लेकर टर्की से भाग गए। अब बाहरी और भीतरी शत्रुओं को भगाकर कमाल निश्चिन्त हो गए।

इतना सब कुछ हो जाने पर भी टर्की के धार्मिक-क्षेत्रों में अशान्ति की आग फैल रही थी। खलीफा के सिंहासनाच्युत हो जाने से तमाम इस्लामी दुनियाँ में एक तहलका-सा मच गया। हिन्दुस्थान में जो खिलाफत आंदोलन आरंभ हुआ था और जिसकी बागडोर अली बन्धुओं

ने अपने हाथ में ली थी, वह उसी खलीफा को पुनः राजगद्दी पर बैठाए जाने का आंदोलन था। भारत के समस्त हिन्दुओं ने इस आंदोलन में प्रमुख भाग लिया था। दूसरी तरफ पदच्युत-सुल्तान के मंत्री और अधिकारी थे जो जनता को कमाल के खिलाफ भड़का रहे थे। तीसरे टर्की आर्थिक कठिनाइयों में फँसा हुआ था। बेकारी की अधिकता से जनता असन्तुष्ट भी हो चली थी। चौथी तरफ अंग्रेजों ने कुर्द जाति के लोगों को सहायता देकर बलवा करवा दिया। इस तरह कमालपाशा चारो ओर से मुसीबतों से घिर गए। पर कमाल ने इन मुसीबतों को रत्ती भर भी परवाह नहीं की। सबसे पहिले उन्होंने अखबारों पर काफी कड़ाई कर दी, जिससे मजहबी आग एक जगह से दूसरी जगह न फैल सकी। व्यवस्थापिका सभा को एक कोने में छोड़कर, सम्पूर्ण कार्यवाही अपने हाथों में लेकर बलवाईयों को मार भगाया। साथ ही समूचे देश में इतनी कड़ाई का प्रबन्ध कर दिया, जिससे कोई भी विद्रोही भविष्य में सर न उठा सके। इस तीव्र कार्यवाही से टर्की में फिर शांति का साम्राज्य स्थापित हो गया।

कमाल ने राजनैतिक सुधारों के साथ-साथ सामाजिक सुधार भी आरम्भ कर दिये। फैज़ टोपी का पहनना जुर्म करार दे दिया गया और टोप लगाने की आज्ञा जारी की गई। धार्मिक संस्थाओं को बंद कर रोमन-लिपि जारी की गई। इटली और जर्मनी के कानूनों की तरह अपने यहाँ कानून बना डाले। कौन जानता था कि एक शराब में मस्त रहने वाला और वेश्याओं के अड्डे में पड़े रहने वाला कमाल एक दिन टर्की का राष्ट्रपति बनेगा।

-+-++-+-+-

जर्मनी का भाग्य विधाता

एडोल्फ हिटलर

(१) एडोल्फ हिटलर की आत्मकथा।

(२) तूफानी दल।

(३) नाज़ीवाद और उसके सिद्धांत।

(४) खूँरेजी, जुल्म और सख्तियाँ।

(५) जर्मनी के जीवन का नवीन विकास।

(६) हिटलर का भाषण।

(७) हिटलर शैतान है, या देवता।

एडोल्फ हिटलर की आत्मकथा

जर्मनी का वर्तमान् तानाशाह हिटलर, जर्मन नहीं, एक आस्ट्रियन जाति का है। अपनी वक्तृत्व शक्ति, और आत्मिक शक्ति की प्रधानता से मनुष्य क्या नहीं कर सकता, यह हिटलर के जीवन से स्पष्ट प्रकट होता है। वह प्राय: कहा करता है कि—"मनुष्य जो चाहे, और जैसा चाहे बन सकता है।" अगर मनुष्य की आत्मिक और इच्छा-शक्ति जागृत हैं, तो ये दिव्य-शक्तियाँ मनुष्य को उन्नति की ओर शीघ्र ही खींच ले जाती हैं। भारतीय आध्यात्मिक महापुरुषों ने इस सिद्धांत को अत्यन्त महत्वशील माना है, कि मनुष्य की प्रबल और दृढ़ इच्छा-शक्ति उसे स्वर्ण के सिंहासन पर बैठा देती है। जर्मनी का भाग्य-विधाता एडोल्फ-हिटलर आस्ट्रिया-प्रदेश का ओवरोस्टेरिच प्रान्त का निवासी है। हिट-

लर का पिता एक मामूली अफसर था। पिता के देहवासन के पश्चात् हिटलर की आंतरिक इच्छा एक कुशल चित्रकार बनने की हुई। अपनी इच्छा को लेकर वह वियेना के एक स्कूल में दाखिल हुआ। परन्तु चित्रकला में अयोग्य समझ उसे वहाँ से निकाल दिया गया। इतने पर भी हिटलर की इच्छा चित्रकार बनने की ही रही। वह दीवालों पर चित्रकारी करके पैसा कमाने लगा। हिटलर के साथी भी साधारण दरजे के मजदूर थे, जिनके साथ मिलकर वह काम करता था। इस चित्रकला ही में वह साम्यवाद का कट्टर विरोधी बन गया। जब वह एक कुशल चित्रकार बन रहा था और उसकी समस्त कामनाएँ और आत्मिक शक्तियाँ, इस विशेष कला की ओर झुक रही थीं; तभी संसारव्यापी-महायुद्ध छिड़ गया। जर्मन-सम्राट कैसर ने रण-दुन्दुभी फूँक दी। जर्मनी की विशाल सेनाएँ रण-क्षेत्रों की ओर भागती दिखाई देने लगीं। एक बावेरियन सेना में, हिटलर भी सिपाहियाना पोशाक पहिन, अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित दिखाई देने लगा।

इस महायुद्ध में वह जख्मी हो गया। इसके बाद गैसों के जहरीले धुएँ से कुछ दिन के लिए अन्धा भी हो गया था, फिर भी उसके पद की उन्नति नहीं हुई। वह सिपाही का सिपाही ही रहा। उसका यह सैनिक-जीवन भी उसे उन्नति के मार्ग पर नहीं पहुँचा सका। उसने जर्मन-सम्राट कैसर की बहुत सेवाएँ कीं। ग्रामीण जनता के पास जाकर वह देश के नाम पर धन बटोरता था, और देश के लिये सैनिकों की अपीलें करता था। महायुद्ध में उसने बड़ी बहादुरी और उत्साह के साथ काम किया। इस महायुद्ध में जर्मनी की सेवा करने के कारण वह

आस्ट्रिया से निर्वासित कर दिया गया। तभी से वह जर्मनी का नागरिक बन गया।

हिटलर का जीवन चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। सन् १९१९ ई० तक, दूसरा १९२३ तक, तीसरा १९३० तक, और चौथा सन् १९३२ से लेकर सन् १९३८ तक। ये चारों जीवन के अध्याय उसके विकासवाद की घड़ियाँ थीं, जो उसे जर्मनी के सिंहासन पर आरूढ़ करा रहीं थीं। यूरोपीय महायुद्ध समाप्त हुआ। मित्र-राष्ट्रों में और जर्मनी में सन्धियाँ हो गईं। चारो ओर हर्ष और विजय की खुशियाँ मनाई जाने लगीं। युद्ध के समाप्त होते ही म्युनिच में साम्यवादियों ने अपना अधिकार जमा लिया। अर्नेस्ट टालर और कुर्ट इसनर ने बावेरिया प्रान्त में सोवियट सरकार की स्थापना कर दी। एडोल्फ हिटलर अपने कुछ सैनिकों को लेकर इस सोवियट आन्दोलन को दबाने का यत्न करने लगा। इसनर और टालर दोनों कैद कर लिये गये। इसके बाद वह जर्मनी बुला लिया गया। वहाँ प्रजातंत्रीय सरकार स्थापित हो चुकी थी। इसी समय इसने राजनैतिक मैदान में अपना पहला कदम बढ़ाया। महायुद्ध के प्रभाव से तथा कैसर के सिंहासन त्याग से, देश में कई राजनैतिक-पार्टियों का जन्म हुआ। हिटलर ने भी एक नवीन राजनैतिक पार्टी को जन्म दिया।

शहर म्यूनिच में उसने ६ आदमियों की एक राजनैतिक पार्टी बनाई। वह स्वयं उसका नेता बना। उसे अपने प्रभावशाली वक्तव्य और अपनी इच्छा-शक्ति पर पूर्ण विश्वास था। जहाँ वह देखता था, उसे वहीं सफलता के दर्शन होते थे। उसकी मनोवृत्तियाँ उसे सहज ही

में निराशा की ओर ले जाने वाली नहीं थीं। उसकी आत्मा जर्मनी के विशाल आकाश-हृदय में अपना प्रभाव फैला रही थी। सन् १९२३ ईस्वी में बावेरिया में पुच (*Putch*) आन्दोलन आरम्भ हुआ। वानलुडेन डोर्फ और हिटलर इस आन्दोलन में अगुआ हुए। आंदोलन का मुख्य उद्देश था, बावेरिया प्रान्त को जर्मन रिपब्लिकन पार्टी से छीन लेना। परन्तु इस आन्दोलन का संगठन ठीक नहीं था। । रूस और राईनलैण्ड में हजारों जर्मन फ्रांसिसियों द्वारा मार डाले गये। हिटलर अहिंसक क्रांति चाहता था ; लेकिन उसमें उसे सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। अन्त में पकड़कर कैद कर लिया गया। उसने अपने अभियोग के सिलसिले में कहा था:—"जर्मनी के राजतंत्र के विरुद्ध एक बड़ा भारी अन्याय किया गया है। यदि आज्ञा मिले तो मैं कैसर को इसकी सूचना दूँ कि जर्मन-आन्दोलन से सम्राट के प्रति जो अन्याय किया गया है, उसका बदला लूँ।" यह अब भी ठीक-ठीक नहीं कहा जा सक्ता, कि हिटलर राजतंत्रवादी है, लेकिन इतना जरूर है, कि हिटलर कैसर का महान् भक्त है। प्रधान मन्त्री वानकर की आज्ञा से पुच आन्दोलनकारियों पर गोली चलाई गई थी। हिटलर के कैद होते ही, उसकी पार्टी छिन्न-भिन्न हो गई।

(२)

जेल में एक वर्ष व्यतीत करने के बाद हिटलर ने अपनी जिन्दगी का चौथा अध्याय प्रारम्भ किया। सन् १९२५ ईस्वी में चुनाव युद्ध शुरू हुआ, और हिटलर ने उसमें भाग लिया। पहले वह असफल हुआ।

सन् १६२६ में उसने चुनाव की हलचल शुरू की। सन् १६२८ में वह उम्मेदवारी में फिर असफल हो गया। सन् १६२६ में उसने एक नवीन पार्टी का संगठन किया। इस समय हिटलर की पालिसी काम कर गई। गरीबों को अपना सहायक बना, और आप उनका हमदर्द बनकर चुनाव का मैदान सर कर लिया। सन् १६३० ई० में एक सबल नाज़ी पार्टी का संगठन किया, और उसी साल फैसिस्ट दल की तरफ से उम्मेदवार उठ खड़ा हुआ। हिटलर का प्रोग्राम और उसके भाषण देश भर में गूँज रहे थे। उसी समय लिपिजिग में राजद्रोह का एक सनसनीपूर्ण मुकदमा चल रहा था, जिसमें हिटलर की गवाही थी। हिटलर ने अपनी गवाही में बड़ी शान के साथ कहा—"जब हमारा दल विजयी होगा, तो वह एक अदालत कायम करेगा, और उसके सामने सन् १६२८ के वे अपराधी पेश किए जावेंगे, जिन्होंने जर्मन प्रजातंत्र राज्य स्थापित कर मित्र-राष्ट्रों से संधि की थी। इन्हें अपने अपराधों के प्रति उत्तरदायी होना पड़ेगा। मैं स्पष्टतया कह देना चाहता हूँ कि उस समय मनुष्यों के मस्तक कटकर धूल धूसरित हो जावेंगे।" सन् १६३१ और ३२ में उसके वोटों में आशा-जनक वृद्धि हुई। इसी समय एक "तूफानी दल" स्थापित हुआ, जिसमें हज़ारों जर्मन नवयुवक भर्ती होगए।

तूफ़ानी-दल

सन् १६३१ में फासिस्ट दल का जुलूस निकलने वाला था। जर्मन सरकार इस जुलूस के विरुद्ध थी। उसने एक घोषणा-पत्र जारी किया, जिसमें जुलूस के निकलने की मनाही थी। हिटलर को जब वह घोषणा-

पत्र मिला तब उसने उसे ठुकरा दिया और बड़ी शान से अपने तूफ़ानी दल को आज्ञा दी—

"फारवर्ड-मार्च"

हिटलर का तूफ़ानी दल बड़ी शान से निकला ! जर्मन सरकार हिटलर की दृढ़ता और उसकी शक्ति देखकर कुछ न कर सकी। हिटलर अपने दलबल सहित म्यूनिच पहुँच गया। जर्मन स्त्रियों ने हिटलर का खूब साथ दिया। यद्यपि हिटलर स्त्रियों से घृणा करता था, फिर भी जर्मन स्त्रियाँ उसे बहुत प्यार के साथ देखतीं और उसका साथ देती थीं। उसकी स्वाभाविक प्रकृति स्त्रियों से घृणा-जनक थी; लेकिन उसकी सतेज वाणी स्त्रियों को मोहित करनेवाली होती थी। वह अपने सिद्धांतों की व्याख्या बड़े ही जोशीले और मनोरम भाषा में प्रकट करता था, जिससे चारों ओर करतल-ध्वनि होने लगती थी। उसका भाषण विशेषतः देशभक्ति, राज्य-प्रतिष्ठा और पितृभूमि पर ही होते थे। कभी-कभी वह जर्मनी पर होनेवाले अत्याचारों के प्रति बदला लेने पर लम्बा भाषण देता था, जिससे जनता बहुत भीषणरूप से उत्तेजित हो उठती थी। उसके भाषण में एक बड़ी विचित्रता थी। उसके विरोधी भी शीघ्र ही उसके भाषण के प्रभाव में आकर उसके अनुयायी बन जाते थे। एक दिन उसने दस हजार की भीड़ में भाषण देते हुए कहा था—अगर जनता स्वतंत्र होना चाहे, तो उसके लिये हथियार घर ही में मिल जावेंगे। तुमलोग पहिले स्वतंत्र होने की इच्छा करो। हथियार तो इच्छा होते ही मिल जावेंगे।

यही महान् व्यक्ति अपने आत्मिक-प्रभाव से, जर्मनी का भाग्य विधाता बना है। यही तानाशाह एडोल्फ हिटलर है; जिसकी एक साँस से समस्त संसार काँप उठता है। आज उसके हाथों में जर्मनी की पूरी ताक़त है। वह कहता है मैं संसार की असभ्यता की रक्षा करूँगा। वह कहता है मैं संसार से अन्याय को मिटा दूँगा। वह कहता है, मैं अपने देश में शुद्ध संस्कृति और एक ख़ून की जर्मन प्रजा को जन्म दूँगा। वह कहता है मेरी प्राचीन संस्कृति आर्य है, और मैं आर्य हूँ। हिटलर ने सबसे पहिले "नाज़ीवाद" को जन्म दिया जिसका उद्देश्य है, एक भाषा एक भूषा, एक जबान और एक ख़ून ! उसने अपने राष्ट्र की बुनियाद इसी सिद्धांतों पर खड़ी की और उसे उसमें आशातीत सफलता मिली। उसका सबसे जबरदस्त-सिद्धांत यह है कि मित्रराष्ट्रों की गुलामी से देश को बिलकुल मुक्त कर देना। चांसलर बनते ही उसने कम्यूनिस्ट पत्रों के प्रकाशन को बन्द कर दिया। अभी तक नहीं कहा जा सका कि हिटलर की राजनीति के गर्भ में क्या है ? हिटलर की आवाज सारे संसार में गूँजती है। कोई उसे महान् व्यक्ति, महान् आत्मा और महान् राजनीतिज्ञ कहते हैं। कोई उसे जर्मनी का शैतान और राजतंत्रवादी कहते हैं। परन्तु वास्तव में वह है क्या; यह किसी को पता नहीं है। एक तरफ वह शांति का महान् उपासक पाया जाता है; तो दूसरी तरफ वह संसार को हड़पने के लिये मुँह फैलाए बैठा है। जर्मन सिपाहियों की तलवारें म्यानों में खटखटा रही हैं। हिटलर किसानों का पूरा पक्षपाती है। किसानों से उसे प्यार है और किसानों को वह राष्ट्र की बहुमूल्य संपत्ति समझता है।

सन् १९३३ में हिटलर

चुनाव में जब हिटलर की विजय हुई, तो कम्यूनिस्टों और हिटलर दलवालों में काफी मुठभेड़ें हो गईं। बर्लिन-क्रेफील्ड-मोरस-फाएगेम और हैम्बर्ग में नाज़ियों और कम्यूनिस्टों में खूब घमासान युद्ध होने लगे। हिटलर ने शीघ्र ही कम्यूनिस्टों को दबा दिया। सन् १९३३ में जर्मन जनता तथा विशेष राजनीतिज्ञ शास्त्रियों का यह मत था कि कैसर फिर से सिंहासन पर बैठाये जावेंगे। क्योंकि हिटलर इस समय जो कार्य कर रहा था, उसमें कैसर के प्रति किसी भी तरह की घृणा नहीं थी। हिटलर की सन् १९३३ ई० वाली राजनीति से यह स्पष्ट ज्ञात होता था, कि भागे हुए कैसर को पुनः बुलाने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है। क्योंकि जर्मन सेनापति हिंडेनबर्ग अभी तक कैसर के महान् अनुयाइयों में से एक थे। जब तक कैसर का प्रभाव जर्मनी पर रहा, तबतक हिंडेनबर्ग उनके दाहिने हाथ होकर रहे, और जब हिटलर की सत्ता हुई, तब ये हिटलर के दाहिने हाथ हो गए ? अभी तक कैसर जर्मनी के विशाल राजमहलों की तरफ टकटकी लगाए देख रहा था, उसे अपने दोनों साथियों से महान् आशाएँ थीं, वह समझता था कि संसार के त्याग देने पर भी मुझे हिटलर और हिंडेनबर्ग सरीखे महान् विश्वास-पात्र व्यक्ति नहीं त्याग सकेंगे, परन्तु यह मायावी-स्वप्न थोड़े ही दिन देखकर, कैसर के भाग्य ने कैसर को उत्तर दे दिया। हिंडेनबर्ग ने कैसर को साफ उत्तर दे दिया कि—"अच्छा हो यदि आप जर्मनी के बाहर ही रहें।" इधर हिटलर के हाथों में सत्ता आते ही उसने कैसर को ठुकरा दिया।

अब जर्मनी में हिटलरी-सत्ता धुआँधार आँधी की तरह बढ़ने लगी। उसके तूफानी दलों का प्रबन्ध सारे देश में हो गया। जर्मनी के हरएक शहरों में तूफानी दलों के जुलूस और सजे हुए हवाई जहाज़ आकाश-मार्गों में उड़कर हिटलरशाही की सूचना देने लगे। हिटलर ने सोवियट सरकार को तरह पंचवर्षीय योजना के स्थान में चार वर्ष की योजना रक्खी। कम्यूनिस्टों को सभा करने की मनाही कर दी और उनके पत्रों पर कड़ा प्रतिबंध लगा दिया गया। नाज़ी सिद्धांतों के विरुद्ध कोई कलम भी न चला सके इसके लिये हिटलर ने देश भर में कड़ी आज्ञाएँ प्रचलित कर दीं।

खूँरेजी-सख्ती-और जुल्म, हिटलर का फासिज्मवाद

सन् १९३८

(२)

१९३२ ईस्वी के जर्मनी के छिन्न-भिन्न राजनैतिक वातावरण में फासिज्मवाद को लेकर हिटलर जर्मनी के भाग्य-विधाता बने। हिटलर के राजनैतिक मंच पर, मनुष्यता और नस्ल की तरक्की के लिये उन्नति-शील और शक्तिशाली समाज, फासिज्मवाद की वेदी पर बलिदान होने लगे। हिटलर ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार और उनकी रक्षा के निमित्त प्रेस आर्डिनेन्सों के सहारे तमाम पार्टियों की जबानें बन्द कर दीं। यह वह कानून था, जिसे जंगली और हवशी कौमें कभी कभी काम में लाती थीं। जैसे किसी राजद्रोही अपराधी के मुँह में किसी जमाने में गरम शीशा भर दिया जाता था। हिटलर के फासिज्मवाद के अत्याचारों का

विरोध करने के लिये अखिल विश्व-समिति ने जो रिपोर्ट छापी थी; उसमें हिटलर की नीति का नंगा-प्रदर्शन किया गया था और जिसे देख-कर दुनियाँ क्षुब्ध हो उठी थी।

हिटलर के दाहिने हाथ, जनरल गोरिंग ने नस्ल की तरक्की के दौरान में जर्मन-निवासियों को और सदियों से बसने वाले गैर जर्मन-नागरिकों को गोलियों और हंटरों की चोटों से उनको दीनदुनियाँ से मिटा दिया। इस नस्ल की तरक्की में, जर्मनी के प्रसिद्ध-साहित्यिक, कलाकार, सांगीत-प्रेमी, डाक्टर और वैज्ञानिकों का खात्मा कर दिया गया; ताकि गैर-जर्मन सभ्य-समाज जर्मनी में न रह सके। हिटलर के इस फासिज्मवाद ने एक वह तूफान खड़ा किया जिससे दुनियाँ नाम लेते ही चौंक उठती है। फासिज्म ने ज्ञान की रोशनी और सभ्यता के विकास को ही नहीं कुचल डाला वरन् अपने देश के बंधुत्व के नाते को भी नष्ट कर दिया। जर्मनी की शांत प्रजा को खूँरेजी, जुल्म और सख्ती के पाठ पढ़ाये जाने लगे जिससे पाशविक मनोवृत्तियों की वृद्धि होने लगी। नाजी लोग हमेशा खून और जुल्म के नशे में मस्त हो गए।

अभी तक जर्मनी के वातावरण में ही यह आवाज गूँज रही थी कि एकाएक हिटलर १०००० हजार सैनिकों की एक टुकड़ी लेकर १२ मार्च सन् १९३८ को आस्ट्रिया में घुस पड़ा और उसपर अपना कब्जा कर लिया। आस्ट्रिया में आम चुनाव की तैयारियाँ हो रही थीं। हिटलर ने बहुत दिन पहिले अपने सिद्धान्तों को आस्ट्रिया में फैला रखा था क्योंकि उसे यह ज्ञात हो चुका था, कि आस्ट्रियन जनमत मेरे पक्ष में नहीं है। यद्यपि उसने अपने आतंकवाद और भयंकर जोशीली वक्तृता

से ६० फीसदी वोट प्राप्त कर लिए तथापि हिटलर की आत्मा इस शैतानी नीति से डर रही थी।

११ मार्च की आधी रात को अपने ब्लैक गार्डों सहित जिनकी संख्या १६००० थी वह आस्ट्रिया की सरहद में घुस पड़ा। प्रातःकाल हिटलर की रणवाहिनी ५०००० हजार सेना मय गोला बारूद, गैस, टंक और मशीनगनों सहित आ पहुँची। हिटलर अपनी जय के नारे लगाता हुआ, तमाम आस्ट्रिया में पिल पड़ा। देखते ही देखते सारे देश में खुफिया-पुलिस के पिकेट बैठा दिये गए। आतंकवादी पुलिस ने तमाम देश में हाहाकार मचा दिया। इस भयंकर आतंक ने कुछ क्षण के लिये संसार को हिला दिया। विश्व की सभी शक्तियाँ मौन धारण किये हुए थीं और हिटलर का तमाशा दूर से देख रही थीं। संसार के सभी राष्ट्रों ने इस काली-करतूत को नत-मस्तक किये हुए स्वीकार कर लिया।

हिटलर के गुप्तचर-विभाग के पास पहिले ही से संदिग्ध व्यक्तियों की सूची थी और जो उसके सिद्धांतों के खिलाफ थे, उनका एक लम्बा रजिस्टर उसके पास था। मुल्क पर कब्जा होते ही विरोधियों की खोज आरम्भ हुई। पुलिस ने प्रत्येक घर की तलाशियाँ लेनी शुरू कीं। शहरों में भीषण नाकेबंदी कर दी गई। लोग पकड़-पकडकर कैम्पों में रखे जाने लगे, स्त्रियों और बच्चों पर गोलियाँ और बन्दूक के कुन्दे चलने लगे। लोगों की जायदादें जप्त की जाने लगीं। सैकड़ों को देश निकाला और सैकड़ों को मौत के घाट उतार दिया गया।

आस्ट्रिया में चारों तरफ खूँरेजी, जुल्म और सख्तियों की धूम मच

गई। इस राक्षसी अत्याचार से बचने के लिये अधिकांश प्रतिष्ठित विद्वान महापुरुषों ने अपनी आत्म-हत्यायें तक कर डालीं। आत्महत्या करने वालों की संख्या १००० से ऊपर तक पहुँच चुकी थी। जब हिटलरी तूफानी-फौजें और पुलिस के दस्ते उन प्रतिष्ठित नागरिकों के घरों पर पहुँचती तो वहाँ उसे सिर्फ लाशों के ढेर मिलते थे। बच्चों, बूढ़ों तथा नवजवान स्त्रियों के करुण-क्रन्दन से, होनहार नन्हीं-नन्हीं बालिकाओं के विलापों से आकाशमंडल गूँज उठा। हिटलर के समान किसी भी विजेताओं ने पराजित देश के प्रति ऐसे जघन्य अत्याचार नहीं किये होंगे। मनुष्यत्व, बंधुत्व, सभ्यता, कला और विज्ञान की खूनी-होलियाँ आस्ट्रिया के शांतिमय-प्रांगण में खेली जाने लगीं। विज्ञान के अनेकों प्रोफेसर, दर्शन शास्त्रों के ज्ञाता और सांगीत तथा राजनीति-कला के आचार्य गोलियों से उड़ा दिए गए।

यूरोप के प्रसिद्ध लेखक अर्नाल्ड हाल रडिस के प्रति भी ऐसा ही जघन्य अत्याचार किया गया। जब वे जेकोस्लाविया से भागने लगे तो उन्हें पकड़कर बंद गाड़ी में फेंक दिया गया। प्रसिद्ध इतिहासकार एगन फ्रडिल और कुर्त सोनेन फेल्ड को एक कैम्प में बड़ी बेरहमी के साथ मार डाला गया। इससे हिटलर की उस बर्बरता का परिचय मिलता है, जिसे उसने शांति के नाम पर संसार के सामने रखा है।

यहूदियों के साथ जो जघन्य अन्याय किये गए, उनसे तो संसार विक्षिप्त हो उठा। यहूदियों की सत्ता मिटा देने का ही नहीं, वरन् संसार से यहूदियों की जाति ही नष्ट कर दी जाय, इस सिद्धांत को

लेकर हिटलर ने अपना फौलादी पंजा फैलाया। फलस्वरूप बीस हजार से ऊपर यहूदियों को फासिज्म-शासन से निकाल बाहर कर दिया गया। बैरन अल्फार्जो एक प्रसिद्ध बैङ्कर था, उसकी तमाम रियासत जप्त करली गई। इन अभागे यहूदियों का एक भीषण अपराध था, जिसे हिटलर और उसका साथी जनरल गोरिंग ही जानता था। यहूदियों ने चुनाव के समय हिटलर के पक्ष में बहुत ही कम वोट दिए थे। फासिज्मवाद के विरुद्ध यहूदियों का बहुमत नहीं था। यहूदी जर्मनी की राजनीति को शुद्ध एवं पवित्र रखने की गरज से हिटलर की नीति का जोरों से विरोध किया था जिसका यथोचित पुरष्कार उन्हें हाथोहाथ मिल गया।

(४)

संसार में यहूदियों की संख्या अन्य जातियों की अपेक्षा बहुत ही कम है। इनका कोई निज़ी राष्ट्र नहीं है। यूरोप में, विशेपकर जर्मनी और आस्ट्रिया में इनकी आबादी १,६७००० से ऊपर है। प्रायः सभी यहूदी धनी एवं शिक्षित वर्ग के हैं। संसार की सभ्यता के विकास में यहूदियों का मुख्य स्थान रहा है। संसार में मानव-समाज की उन्नति के लिये, तथा मनुष्यत्व के विकासवादी-कार्यों का उद्‌घाटन यहूदी विद्वानों, और यहूदी वैज्ञानिकों ने ही किया। संसार के धनी व्यापारियों में यहूदियों का दरजा सबसे प्रथम है। अकेले विएना में यहूदियों की संख्या १ लाख ६७ हजार है। विएना और आस्ट्रिया के व्यापार-धंधे सभी इन्हीं के हाथ में है। साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र सभी यहूदियों के अधिकार में है। सुप्रसिद्ध डाक्टरों और प्रोफेसरों में यहूदी ही सर्व-

प्रथम हैं। तात्पर्य यह है कि आस्ट्रिया के विकासवादी यहूदी ही हैं। देशभक्ति में भी ये किसी से पीछे नहीं हैं। गत महायुद्ध में जर्मनी को धन और जन से अपूर्व सहायता की थी। संसार के इतिहास में यहूदियों का जनसमुदाय उनकी शांति, शिक्षा, सभ्यता और आदर्श के लिये प्रसिद्ध है। अपने धर्म के महान् आदर्शों पर स्थित यह जाति आज भी जीवित है। इस्लाम ने सबसे पहिले इन्हें मिटा देने की खूब कोशिशें कीं। यहाँ तक कि यहूदियों के साथ रहने वाले, या उसके पास बैठने वाले मुसलमान को मार डालने का फतवा दिया गया। फिलस्तीन (पैलिस्टाईन) जो इनका एक तीर्थ स्थान है, उसे भी विदेशियों ने छिन्न-भिन्न कर डाला। सारे संसार में विएना की सुन्दर नगरी प्रसिद्ध है। इसे संसारव्यापी सुन्दर बनाने का श्रेय यहूदियों को ही प्राप्त है। अब विएना की वह सुन्दर नगरी, सभ्यता और संस्कृति से विहीन हो गयी। हिटलर इस उच्चतम संस्कृति को इसलिये नष्ट कर रहा है कि उसका फासिज्म सदा उसकी अनुपस्थिति में भी सुख की नींद से करवटें बदलता रहे। यहूदियों को निर्वासित करने में ही उसने अपनी महान् विजय समझी है। संसार में अगर कोई हिटलर के सिद्धांतों को परास्त कर सकता है, तो वह यहूदी सभ्यता और संस्कृति ही है। नोबेल प्राईज़ के विजेता सुप्रसिद्ध-साहित्यिक वान-आवस्की ने फासिज्म की वेदी पर घुट-घुट कर जान दे दी। वान-आवस्की ही क्या, उसके सरीखे सैकड़ों महान् आत्माओं ने अपनी जीवन-लीला खतम कर दी। कितना जघन्य अत्याचार है! जब आस्ट्रिया और जर्मनी में ये जघन्य जुल्म हो रहे थे तब संसार आँखें बन्द करके आड़-

आठ आँसूओं रो रहा था । संसार-प्रसिद्ध टेनिश-खिलाड़ी वानक्रेथ अब भी तो हिटलर के शिकंजे में जकड़ा हुआ है ।

सभ्यता के पोषक, ज्ञान और विज्ञान के महारथी इन यहूदियों को "अनार्यों" के बहाने जर्मनी से निकाला जा रहा है, और अब आष्ट्रिया में भी यह नंगा-नाच प्रारम्भ कर दिया गया । "फासिज्म-वाद में एक ही नस्ल रहेगी"—इसका कोई अर्थ ही नहीं होता ! संसार के तमाम देशों में सभी जगहों के लाखों नहीं सैकड़ों नागरिक वर्षों से नहीं सदियों से निवास करते चले आये हैं। सिर्फ अकेले भारतवर्ष में, परशियन, यहूदी और ८ करोड़ विदेशी मुसलमान नागरिक हैं जो भारतवर्ष को अपनी जन्म-भूमि मानते हैं। चीन, जापान, रूस और इंग्लैण्ड में कई विदेशी-जातियाँ वहाँ की नागरिक हैं। संसार के महान् से महान् अत्याचारियों ने भी ऐसे उदाहरण किसी भी जाति के प्रति उपस्थित नहीं किये ।

अल्प-संख्यक जाति को रक्षा करने का इससे अच्छा उदाहरण वर्तमान राजनीति के पर्दे पर कहीं नहीं मिलता । छोटे छोटे राज्य और छोटी-छोटी जातियों को नष्ट कर देना ही वर्तमान यूरोपीय राज-नीति का महान् लक्ष्य है । इस क्रूर-कुटिल और विश्वासघातिनी नीति में जर्मनी और इटली की गुप्त-शक्तियाँ चारों तरफ काम कर रही हैं ।

मनुष्यत्व के प्रति फासिज्म का यही शुभ-संदेश है—"कि फासिज्म को जिंदा रखने के लिये उसके विरोधी और विरोधी साहित्य तथा सिद्धांतों को जन्म देने वाले इस दुनियाँ के परदे से मिटा दिये

जावें। हिटलर के उद्देश्य इसी से पूरे होते हैं। उसको विश्वास है कि अगले चुनाव में उसे फिर वही सफलता मिलेगी जो उसे गत चुनाव में मिली थी।

(५)

हिटलर का जीवन कितना भी सादा क्यों न हो? भले ही उसे गोश्त और शराब पीने से घृणा हो! भले ही नवयुवतियों से घृणा करता हो! लेकिन उसके इस सादगी जीवन में किसी राक्षसी मूर्ति की छाया अवश्य है जिससे उसका जीवन कालिमामय हो जाता है। वह राजनीतिज्ञों की दृष्टि में भले ही महान् व्यक्ति गिना जाता हो, परन्तु इसकी विशाल आत्मा में खूँरेजी, जुल्म और सख्तियों के जो भाव छिपे हुए हैं, उससे यह आश्चर्य नहीं कि संसार उसे "शैतान" की पदवी से विभूषित कर दे।

संसार में सिद्धांतों की विजय के लिये, प्रेम सहानुभूति सहयोग और सेवा की आवश्यक्ता होती है। लिंकन, वाशिंगटन, महात्मा-गांधी, तिलक आदि ने अपूर्व सफलता प्राप्त इसलिये की, कि उन्होंने अपने हृदय को निर्मल और विशुद्ध प्रेम से धो डाला था। जिन सिद्धांतों से विकास-वाद का नंदन-कानन सींचा जाता है, वह जल-प्रेम, दया और सहानु-भूति है। हिटलर में यह बात नहीं। वह दर्शनशास्त्र और मनःशास्त्र से अनभिज्ञ है। वह राजनीतिज्ञ अवश्य है—उसमें तर्क शक्ति है, लेकिन इसमें निरंकुशता की भावनाएँ भरी हुई हैं। अगर ऐसा न होता तो वियेना के सुप्रसिद्ध हरवान पापेन और मंत्री वैरन-केटलर अपनी

आत्महत्या कर संसार के समक्ष हिटलर की निरंकुशता का प्रदर्शन न करते। इन महान् आत्माओं की लाशें जंगलों में पड़ी मिलीं। उन पादरियों पर भी, जो हिटलर की नीति के विरोधी हैं, घोर अत्याचार किया जा रहा है। इसमें सन्देह है, कि हिटलर ईसाइयत के विरुद्ध भी लोहा ले रहा है।

आस्ट्रिया पर अधिकार होते ही हिटलर के तूफ़ानी दलवालों ने यहूदियों की दूकानों पर पिकेटिंग करना आरम्भ कर दिया। चाय और कहवे के होटलों पर भी जबरदस्त पहरे लगा दिये गये। इन होटलों के मालिकों को दूकानों से बाहर खड़ा कर दिया गया और उनके गलों में बड़े-बड़े बोर्ड लटका दिये गए, जिनपर लिखा था—"यहूदियों की दूकानों से माल मत खरीदो।" सिर्फ़ अनार्यों को ही माल लेने की इजाज़त थी। नवजवान लड़कियों की भी इसी तरह बेइज्जती की गई। उनके गलों में भी बोर्ड लटकाए गए। इन नवजवान लड़कियों को बैठकें लगाने का भी हुक्म दिया गया। सैंकड़ों तमाशबीन हँस-हँस कर इन लड़कियों का तमाशा देखने लगे। उफ़, हिटलर की आत्मा का इतना पतन!

आज से कुछ दिन पहिले अमेरिका में भी काले नीग्रो (हबशियों) के साथ इसी प्रकार का अत्याचार किया जाता था। ये काले गुलाम, हंटरों की मार से मार डाले जाते थे। इनके नन्हें-नन्हें बच्चे, गरम तेल के कड़ाहों में भून डाले जाते थे। झाड़ों से बाँधकर ये गुलाम हबशी, उल्टे लटकाए जाते और नीचे से आग जला दी जाती थी। हजारों नीग्रो की होलियाँ जलाई गईं। कई गुलामों को एक साथ

जलाया जाता था और चारो तरफ हजारों अमेरिकन तालियाँ पीटते हँसते थे। जानवरों की तरह इनका क्रय-विक्रय होता था। अमेरिकन लोग इन्हें नौकर रखते थे और लम्बी तादाद में गुलामों के बाजार लगते थे। जमींदार और धनवान् लोग इन काले गुलामों को हाँड़ी की तरह ठीक बजा कर लेते थे।—इतना ही नहीं ये जानवरों की तरह काठ के कठघरों में बंद रहते थे। गुलामों के इतिहासों में लिखा है:—इन अभागों को सबेरे ७ बजे से काम पर जाना पड़ता और रात के आठ बजे आना पड़ता था। आठ बजे रात को इन्हें थोड़ा सा अन्न दिया जाता था, जिसे यह उसी समय पीसकर रोटियाँ बनाते थे। दस-दस, बीस-बीस, गुलामों के बीच में एक चक्की होती थी, जिससे आटा पीसने में रातभर लग जाता था। सबेरे फिर काम पर जाना पड़ता। यह दुर्दशा कई वर्षों तक जारी रही। सैकड़ों गुलाम रोज आत्म-हत्याएँ करते थे। पचासों भाग जाते और वे जब पकड़े जाते तो जीवित जला दिये जाते थे।

यह दशा उस समय थी, जब अमेरिका में लिंकन और वाशिंगटन सरीखे महान् देवताओं की पूजा हो रही थी। परन्तु इन भीषण अत्याचारों से काले-गुलामों की कौम मिटी नहीं, वे दुनियाँ में आज भी जीवित हैं। आज उनकी कौम शिक्षित, व्यापारिक और धनी है।

हिटलर ने यहूदियों के प्रति जिस नीति का अवलम्बन किया है, उस नीति से वह कौम मिटाई नहीं जा सकी। उनकी सभ्यता और संस्कृति इतनी परिमार्जित है, कि वे अपनी जाति को दुनियाँ से नहीं मिटने देंगे।

२६ मार्च की एक आस्ट्रियन घटना है। "गेस्टपों के बहुत से अफसर हंगरी की सीमाओं पर पहुँचे। वहाँ जो यहूदी रहते थे, उनको शीघ्र ही सीमा छोड़ने का हुक्म हुआ। जब उन्होंने ८०,०००, शिलिंग की एक लम्बी रकम उन आफिसरों के हवाले की, तब उनको बमुश्किल ३-४ घंटे का समय तैयार होने के लिये दिया गया। इसपर उन आफिसरों ने यह शर्तनामा भी लिखवा लिया कि हम अपनी खुशी से हंगरी छोड़ रहे हैं, और हम अपनी समस्त जायदाद अपनी मर्जी से तुम्हारे सुपुर्द कर रहे हैं, जो कि हमारी नहीं थी। इस तरह उन यहूदियों को मोटर लारियों में भर उन्हें जेकोस्लाविया की सरहद पर जंगली जानवरों की तरह छोड़ दिया गया। सरहदी पहरेदारों ने इन अभागों को जेकोस्ला-विया की सरहद के भीतर नहीं घुसने दिया। उन्होंने सारी रात जंगलों में बिताई। इसके बाद वे फिर हंगेरियन सीमाओं पर पहुँचे, जहाँ वे लोग पकड़ कर जेलों में ठूस दिये गए। इन परिवारों में दस-दस महीने के छोटे-छोटे सुकुमार बालक भी थे, कुछ कोमलाङ्गी नवयुवतियाँ भी थीं। इन अभागों पर क्या गुज़री होगी, इसका अनुमान हमारे पाठक स्वयं ही कर सकते हैं।

अनोखा-जुलूस

एक लेखक ने एक ऐसे जुलूस का वर्णन किया है, जो पाशविकता का अंत कर देता है। जनरल डायर और ओडायर के जलियाना वाले बाग के नीच कृत्य भी फीके पड़ जाते हैं। अभी कुछ दिन हुए यहू-दियों का जुलूस निकाला गया। इन जुलूसों में ७२ वर्ष की बहुत सी

वृद्धा और बहुत से वृद्ध पुरुष भी सम्मिलित थे। इनके गलों में लम्बी-लम्बी तख्तियाँ डालकर उन्हें "बत्तख" की चाल से कई मील तक चलाया गया। उन्हें बीच २ में उठने और बैठने का प्रदर्शन भी करना पड़ता था। इस जुलूस में बड़े २ प्रतिष्ठित नागरिक भी शामिल किये गये थे। जिनमें डाक्टर फिशर का नाम उल्लेखनीय है। डाक्टर फिशर विएना के एक प्रसिद्ध यहूदी खान्दान के हैं। एक प्रतिष्ठित चीफ़ जो ७६ वर्ष के बूढ़े थे, उनको होटलों पर पिकेटिंग करने के लिये मजबूर किया गया। उनसे होटलों के जूठे बर्तन मंजवाए गए। क्या इस फासिज्म-सिद्धान्त से संसार का भला हो सकता है? कदापि नहीं। अत्याचार की भी अन्तिम सीमा होती है।

हिटलर के संदेश

हिटलर जो भी कहता है, वह उसे शीघ्र ही कार्यरूप में परिणित कर देता है। उसने जो संदेश आज तक दिए हैं, उनमें मानवता का लेपमात्र भी नहीं है। हाँ, वह संसार की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये शांति का शुभ संदेश दुनियाँ को अवश्य देता है। उसने अपने सिद्धांत को अमर बनाने के लिये अपनी निरंकुश नीति को शांति की ओट में छिपा रक्खी है। वह हर समय विश्व से मैत्री करने को उत्सुक रहता है। वह कहता है, मुझे युद्ध से घृणा है, लेकिन अगर समय आ गया तो मैं संसार को साफ़ कर दूँगा। उसने अपनी राजनीति के दोनों पक्षों में, राजनीति के तराजू के दोनों पल्लों को बराबर रक्खा है। एक पल्ले में उसकी रणवाहिनी शक्ति डटी हुई है, दूसरे पल्ले में उसके शांति के शुभ

संदेश भरे पड़े हैं। यहूदियों पर इतने अनाचार करने पर भी, वह अपनी सफाई देने का दावा रखता है, कि उसने अभी तक यहूदियों के साथ प्रेम और दया का बर्ताव किया है!

संसार की इस रण-शय्या पर कितने ही हिटलर आकर सो गए, और कितने ही अपने काले-कारनामों के लिये तलवार के घाट उतार दिये गये। सिकंदर और नेपोलियन भी अपनी सत्ता को दुनियाँ में स्थापित नहीं कर सके, उनके नाम भी अब इतिहासों से मिटे जा रहे हैं, फिर हिटलर और उसका सैन्य कोलाहल, उसका नवीन युगान्तर, क्या सदा के लिये अमर रहेगा, यह कोई नहीं कह सक्ता। फासिज्म का सिद्धांत जर्मनी में ही लोकप्रिय कहा जा सक्ता है। वह उन्हीं लोगों को लोकप्रिय है जो हिटलरी-नीति के समर्थक हैं, परन्तु इसमें भी विरोध की भीषण आग छिपी हुई है। जिस विश्वव्यापी सभ्यता और संस्कृति को नष्ट किया जा रहा है और जिसने "जर्मनी" के नाम को अमर किया था, उसकी चिनगारियाँ अवश्य ही किसी दिन भयानक ज्वालाओं के रूप में फूट निकलेगी। प्रतिबंध और राजसत्ताएँ संसार में बहुत ही अल्प जीवन व्यतीत करती हैं, इसे दुनियावी राजनीति मानती हैं।

जर्मनी के जीवन का नवीन विकास

(६)

हिटलर का नाज़ी प्रोपेगेण्डा संगीन की नोकों और तोप के गोलों से फैलाया जा रहा है। नाज़ीवाद एक संगीन है, जिसके भय से

प्रत्येक व्यक्ति को उसे स्वीकार करना ही पड़ता है। नाज़ी प्रोपेगेण्डा के विरुद्ध एक भी शिकायत करना, एक मुसीबत मोल लेना है। इसकी जाँच-पड़ताल ज़ोरों से होती है, और जहाँ नाज़ीवाद के विरुद्ध एक भी शिकायत मिली कि उस व्यक्ति को कठोर दण्ड दिया जाता है, चाहे वह शिकायत असत्य ही क्यों न हो? जर्मन जाति पर जिस नाज़ायज़ तरीके से नाज़ीवाद लादा जा रहा है, उसे जर्मन जनता बहुत धैर्य से सहन कर रही है। यही धैर्य और सहिष्णुता एक भयंकर रक्तपात को अपनी गोद में छिपाए बैठी है। न मालूम यह रक्तपात कब उछल पड़े और जर्मनी में रक्त की होली मचा दे।

जर्मनी के जीवन का यह नवीन विकास जिसे हिटलर के कानून जन्म दे रहे हैं, कौन जानता है, कि ये कभी हिटलर के घातक सिद्ध होंगे। वाशिङ्गटन विश्वविद्यालय के एक लेख में प्रोफेसर मेकेन्जी ने नाज़ीवाद पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि वर्तमान नाज़ी जर्मनी में इसप्रकार के कानून बना दिए गए हैं, जिनकी वजह से उन व्यक्तियों को भी, जो स्वभावतः मितव्ययी नहीं है, मितव्ययी होने के लिये बाध्य होना पड रहा है। फुटकर माल बेचनेवालों को यह आदेश दिया गया है कि वे जहाँ तक सम्भव हो सके पुड़िया बाँधने में कम कागज़ लगायें तथा डोरी का उपयोग न करें। बाज़ारों में जो टूथ-पेस्ट बिकते हैं, उनपर लिखा रहता है "इसे फेंको नहीं।" महिलाओं को मोज़ों पर लगाने के लिये गेटिस नहीं मिलता। बच्चों के खिलौनों तथा गुब्बारों पर रोक लगा दी गई है। सरकार द्वारा जो कानून जारी किये गये हैं, उनके अनुसार प्रत्येक गृहणी के लिये यह

आवश्यक है कि कम से कम वह ७ प्रकार की निकम्मी चीज़ों को अवश्य ही संचित रक्खे—जैसे, चिथड़ा, ताँबा, जस्ता, टीन, अल्यूमीनीयम, शीशा आदि से बनी हुई वस्तुएँ, लोहे और स्टील के पत्तर, रद्दी कागज़, खरगोश के चमड़े और बोतल तथा हड्डियाँ आदि।

एक जर्मन गृहणी को अपने मनोनुकूल भोज देने में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जिस महिला के यहाँ मैं जर्मनी में ठहरा हुआ था, उसने एक दिन शाम को मुझसे कहा:—"मुझे तीन सप्ताह के बाद आज क्रीम मिल सका है। सो भी इस वजह से कि मैंने कुछ दिन पहले एक दूकानदार से कह रक्खा था, कि मेरे एक विदेशी मित्र आने वाले हैं, अतः यदि आप उनके लिये क्रीम की एक टिकिया दे सकेंगे, तो बड़ी कृपा होगी।"—मक्खन तथा अन्य प्रकार की चीज़ें केवल उन्हीं दूकानों से कोई प्राप्त कर सक्ता है, जहाँ से वह उन चीज़ों को बराबर खरीदता रहता है। प्रत्येक जर्मन प्रति सप्ताह आधा पौंड मक्खन, जो मिलावटी होता है तथा आधा पौंड नकली मक्खन प्राप्त करने का अधिकारी है। बाजारों में लकड़ी के लासे से तैयार किया हुआ एक प्रकार का नकली मक्खन बिकता है, जिसे एरजैट कहते हैं। इसे पहिले मशीनों में चिकनाहट लाने के काम में लाया जाता था, किन्तु बाद में स्वास्थ्य-विभाग की ओर से, इसे जेल के कैदियों को खिलाकर देख लेने के उपरान्त खाद्य-पदार्थ घोषित कर दिया गया।"

मि० मैकेन्जी एक और नवीन आविष्कार का वर्णन करते हुए

लिखते हैं कि—"उक्त महिला ने मुझसे कहा, कि आप हमारे यहाँ की नकली वस्तुओं के विषय में नहीं जानते। अच्छा आप इस पायजामे को देखिये।"

"मैंने उस पायजामे को देखकर यह समझा कि यह भूरे फलालैन का होगा, परन्तु वह लकड़ी का बना हुआ था।" इसमें आप ऊन का एक धागा भी न पायेंगे। अब तक अच्छी तरह काम दे रहा है, किन्तु हाँ, मैं इसे अबतक वर्षा के समय पहनकर नहीं निकली हूँ। इसी तरह एक और नियम बना दिया गया है, कि पुरुषों के कमीज़ों की लम्बाई भी २-२ इंच छोटी कर दी जायँ ताकि राष्ट्रीय रूप से माल की बचत होवे। जर्मन महिलाओं को यह ज़ोर देकर आदेश दिया गया है, कि वे घोड़े के मांस को अधिकतर व्यवहार में लावें। उनको बताया गया है कि प्राचीन समय के ट्यूटन लोग घोड़े के मांस को विशेषरूप से पसन्द करते थे। यह एक प्राचीन प्रथा है। गत वर्ष जर्मनी में १,२५००० घोड़े मारे गए। खाद्य-सामग्रियों का इसप्रकार संचय करना भले ही भद्दा जान पड़े किन्तु जर्मनी में खेल दिखानेवाले जादूगरों तक को प्रदर्शन के समय अण्डे-दूध तथा अन्य प्रकार के खाद्य पदार्थों के खाने की मनाही कर दी गई है। इसी प्रकार मितव्ययिता के सम्बन्ध में सरकार की ओर से एक और फरमान जारी किया है, जिसमें बताया गया है कि—"प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह लाश को खर्चीले ढंग से न दफ़नावे।" जर्मनी के नाइयों को भी एक आज्ञा दी गई है, कि वे कटे हुए बालों का संचय करते रहें, जिससे कारपेट तथा अन्य जरूरी सामान बनाया जा सके।"—

जर्मन सिक्का-मार्क

जर्मन सिक्के को जर्मनी से बाहर भेजने की मनाही कर दी गई। जर्मन सिक्का केवल जर्मनी में ही खर्च किया जा सक्ता है। इस कारण अब बाहर से मँगाई जाने वाली वस्तुओं के बदले मार्क नहीं दिया जा सक्ता। इससे व्यापारीवर्ग एक विचित्र रूप से विनिमय कर रहे हैं। न्यू-जेरसी की, स्टैण्डर्ड आयल कम्पनी को, अपने माल के मूल्य में ४,००,००,००० मुँह से बजाए जाने वाले बाजे मिले। मेट्रो-गोल्डविन मेयर फिल्म कम्पनी ने इसी प्रकार अपने माल के मूल्य में एक दरयाई घोड़ा स्वीकार किया, और बाद को उसे एक अमेरिकन सर्कस के हाथ बेच दिया। फिलाडोल्फिया की बड़ी कम्पनी ने जर्मनी में ४३,००० पौंड की एक मशीन भेजी, जिसके मूल्य में उसे नगद रकम के बजाय प्रायः २,००,००० कनारी पक्षी मिले।

इस तरह विदेशी मालों के आयात पर कठोर नियन्त्रण लगा दिया गया। उपरोक्त जर्मन-जीवन का लक्ष्य सिर्फ कच्चे माल से द्रव्योपार्जन करने का है। आर्थिक उद्देशों के सिवाय इसमें और अन्य उद्देशों के जो भाव छिपे हैं, उनका मुख्य तात्पर्य यही है कि यदि विश्व-व्यापी युद्ध छिड़ जावे तो एक भी चीज के लिये दूसरों का मुँह न ताकना पड़े।

हिटलर का विश्व-व्यापी भाषण

(७)

३१ जनवरी सन् १९३९ को बर्लिन में हिटलर का विश्व-व्यापी व्याख्यान संसार ने सुना। उस दिन बर्लिन में मानों दीपावली आ गयी

थी। जर्मनी की तमाम फौजें नवीन उमंगों में झूम रहीं थीं। नाच और गानों के उत्सव हो रहे थे। म्यानों में तलवारें खड़खड़ा रहीं थीं, मानो संसार को हड़पने के लिये जर्मनी के समस्त नर-नारियों का एक भयंकर तूफान उमड़ा जा रहा है। चारों तरफ़ नाज़ी झंडे फहरा रहे थे। सैनिकों के मार्चिङ्ग से गगनभेदी ध्वनि हुई, मानो हिटलर आसमान पर उड़ा जा रहा है। उस दिन छोटे-छोटे बच्चे, छोटी-छोटी तलवारें बाँधे, रणभेरी के गीत गा रहे थे। जर्मनी में उस दिन अपूर्व उत्साह था, एक नवीन जोश था, नई तरंगे थीं और उमंगों में सारा देश बहा जा रहा था।

व्याख्यान का रंगमंच बहुत ही अच्छी तरह से सजाया गया था। लाखों नर-नारियों का समूह हिटलर के भाषण सुनने के लिये एकत्रित था। हर्ष-ध्वनि और तालियों की अपूर्व ध्वनि चतुर्दिक गुञ्जरित हो रही थी। हिटलर अपने साथियों सहित रंगमंच पर आये। जनता ने हर्ष-ध्वनि के नारों और रण-वाद्यों से हिटलर का स्वागत किया। हिटलर ने अपनी वक्तृता में कहना प्रारम्भ किया:—

"उस समय कोई १,३०,००,०० नेशनल सोशलिस्ट वोटर मेरे साथ थे। बाकी २,००,००,००० पन्द्रह पार्टियों में विभक्त थे, जो मेरे नाज़ी आन्दोलन के विरुद्ध थे। इनमें बहुत से ऐसे पादरी भी थे जो हमारे नाज़ी आन्दोलन के विरुद्ध विरोधियों को भड़का रहे थे। हमारे आंदोलन पर विरोधी तालियाँ-पीटकर हँसते थे। अगर जर्मनी उस समय बोलशेविक गड़बड़ी में पड़ जाता तो सारी पश्चिमी सभ्यता का जीवन खतरे में पड़ जाता। एक ओर सीन्योर मुसोलिनी,

यूरोप के उद्धार का कार्य कर रहे हैं। दूसरी तरफ नेशनल सोश-लिस्टों ने उस कार्य को अपनाया जिसे यहूदी और यूरोपियन बिगाड़ने का प्रयत्न कर रहे थे । हिटलर ने भाषण के सिलसिले में फिर कहा कि "हमने सदियों का कार्य छ वर्ष में पूरा किया है। हमने दृढ़ता-पूर्वक अपने आदर्शों की रक्षा की है और प्रस्तावों को अमल में लाकर अपूर्व साहस से यह सफलता प्राप्त की है। हमारी सैनिक-शक्ति भी किसी से कम नहीं । इतना होने पर भी हमने किसी को धमकी नहीं दी, बल्कि तीसरे के हस्तक्षेप से अपनी रक्षा करने का प्रयत्न भर किया है। मुझे आपको यह विश्वास दिलाने की आवश्यका नहीं कि भविष्य में भी हम ऐसे मामलों में पश्चिमी देशों का हस्तक्षेप कदापि सहन नहीं करेंगे, जिनसे हमारा कुछ भी सम्बन्ध रहेगा । इस बात पर हम सहमत हैं कि जर्मनी को हमेशा आर्थिक कठिनाई रही है। यद्यपि इस कठिनाई को दूर करने में हमें कठिनतम प्रयत्न करने पड़ेंगे तथापि मैं आपको विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि इस संबंध में हमें सफलता अवश्य मिलेगी और मिल रही है।

हमारा इरादा

यह नहीं है, कि हम अमेरिका, अथवा वे देश जो हमारे सिद्धांतों से सहमत नहीं हैं, उनपर आक्रमण करेंगे। हमारी इस बातमें कोई दिलचस्पी नहीं है कि नेशनल सोशलिज्म हम दूसरों पर लादें। गत महायुद्ध में जर्मनी को जो भारी रकम और खिराज देने पड़े हैं और साथ ही उसके जो उपनिवेश छिन गए हैं, उसे वह वापस चाहता है ।

इससे अधिक नहीं। युद्ध से पहिले डेमोक्रेटों को यह बतलाया गया था, कि जर्मनी को नष्ट कर देने से व्यापार खूब बढ़-चढ़ जायगा। मगर ऐसा करने पर भी बृटिश जनता अधिक मालदार नहीं बनी। अब जर्मनी पहिले से ज्यादा शक्तिशाली है। हम उपनिवेशों को इस लिये नहीं चाहते कि हम अपनी सेना वहाँ रक्खें। हमें तो अपनी आबादी पर ही संतोष है। लेकिन हमारा इरादा है कि हम उपनिवेश इसलिये चाहते हैं, कि हमें उनसे आर्थिक सहायता प्राप्त हो सके। हम तो यही चाहते हैं, कि कच्चा माल हम खरीदें और उसे तैयार करके बेचें।

हिटलर का विश्व-व्यापी तोपखाना (शक्ति)

सन् १४ में कैसर का स्वप्न था, "विश्व-विजयी जर्मनी"। आज हिटलर का स्वप्न है—"महान् राष्ट्र जर्मनी"—पहिला स्वप्न तो असफल हो गया। दूसरा स्वप्न सफल हो रहा है। पहिला स्वप्न था, अपने लिये और दूसरा स्वप्न है देश और जाति के लिये। सन् १९२२ से लेकर सन् १९३२ तक जर्मनी में दरिद्रता, निरंकुशता और स्वेच्छा-चारिता का शासन और प्रजा का बलिदान होता रहा। गत ५ वर्ष में ही उसे नवीन जीवन प्राप्त हुआ। आज जर्मनी का नाम लेते ही एक अपूर्व-उत्साह की लहर जगमगा उठती है। जिसतरह महात्मा गाँधी ने ३० करोड़ भारतीयों की आत्माओं को जाग्रत कर दिया है उसी तरह हिटलर ने ८ करोड़ जर्मनों को एकता के सूत्र में पिरो दिया है। आज संसार के सभी राष्ट्र जर्मनी का और हिटलर का नाम सुनते ही

दुम दबाते हैं । हिटलर की ताकत कुछ जर्मनी तक ही सीमित नहीं है । अमेरिका भी जर्मनी के नाम से चौकन्ना रहने लगा । कभी-कभी रूजवेल्ट और हिटलर में दो-दो चोंचे हो जाती हैं । हिटलर की हुँकार के आगे ब्रिटेन-फ्रांस और रूस सरीखे शक्तिशाली राष्ट्रों की आज नींद हराम हो रही है । हिटलर में वह ताकत है, कि यदि वह चाहे तो यूरोप का नकशा दो घड़ी में बदल दे । सिर्फ जेकोस्लाविया के ३३ लाख जर्मन—हिटलर की एक आवाज़ में तलवार लेकर मैदान में आ सकते हैं । हिटलर को विश्वास है, कि समय पड़ने पर वह ४करोड़ जर्मनों को मैदान में सर कटाने के लिये खड़ा कर दे सकता है ।

बालकन राष्ट्रों में हिटलर की प्रभुता इतनी बढ़-चढ़ गई है कि किसी दिन वह तमाम बालकन प्रांतों पर अधिकार कर लेगा । डॅजिग में हिटलर का कृपा-भाजन अलबर्ट फोरेस्टर के पास ३ लाख देश-भक्त जर्मन प्रजा है । इसके बाद लिथुआनियाँ में ५६००० जर्मन हैं जो अपने नेता न्यूमैन के इशारे पर हिटलर के नाम पर सर कटा देने को प्रस्तुत हैं । जर्मनी का सबसे जबरदस्त तोपखाना है, इटली की मैत्री ।

इस समय जर्मनी को जो नवीन शक्ति मिली है, वह स्पेन की ताकत है । जनरल फ्रांको, हिटलर और मुसोलिनी का दाहिना हाथ है। स्पेन में फ्रांको की सरकार कायम हो चुकी है । वह हिटलर और मुसोलिनी के इशारे पर अपना काम कर रही है । युद्ध छिड़ने पर स्पेन की तमाम शक्तियाँ हिटलर के साथ होंगी । इधर एशिया में तुर्की ईरान भी हिटलर से अपना संबंध जोड़ चुके हैं । इस तरह हिटलर ने

अपना जादू समस्त संसार पर फैला रखा है, और वह धीरे धीरे अपना प्रभाव बढ़ा रहा है। संभव है, समय आने पर मेमेल, डैंजिग, यूक्रेन तुर्की अफगानिस्तान, जापान और इटली, जर्मनी के साथ मिलकर मित्रराष्ट्रों से लोहा लें। यूक्रेन रूस का एक ऐसा प्रान्त है जो काले सागर के किनारे पर बना है। वहाँ हिटलर का काफी प्रभाव जम गया है। ब्रिटेन, रूस और फ्रांस को दबाने के लिये हिटलर के पास काफी साधन हैं।

बादशाह-अमानुल्ला
और
नादिरशाह

श्रद्धाञ्जलि

अफगानिस्तान के ऊपर मेरा सब कुछ निछावर है ;
लेकिन आपलोगों की सहानुभूति विना
मेरे उद्देश्य की सफलता सिद्ध नहीं
हो सकती।

मौलवी और मुल्लाओं के दकियानूसी विचार आजादी के
मार्ग में बाधक हैं। इन्हें तोड़-फोड़कर
फेंक देना चाहिये।

बादशाह-अमानुल्ला

बादशाह-अमानुल्ला खाँ

गत यूरोपीय महासमर के बाद जब यूरोप के अनेक छोटे-छोटे राष्ट्रों ने स्वतन्त्र होकर संसार में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था, तब एशिया में टर्की और अफ़गानिस्तान भी उन्नति की ओर अग्रसर हुए। गत १८ वर्षों में इन राष्ट्रों ने जो उन्नति की है, वे संसार के इतिहासों में एक नवीन घटनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इन राष्ट्रों के महारथियों ने देखते-देखते अपने देश की कायापलट कर दी। राष्ट्रीयता, स्वतन्त्रता और मानव-समाज के सुधार के निमित्त इन देशों ने जो उन्नति के मार्ग ग्रहण किये हैं, वे गुलाम देशों के लिये अनुकरणीय विषय हैं। मुस्तफा कमाल ने टर्की को नवीन जीवन देकर प्रचण्ड पाखण्डवाद और पतन की ओर ले जाने वाले दकियानूसी विचारों को उखाड़कर फेंक दिया।

अफ़गानिस्तान भी उन्हीं राष्ट्रों में से एक है। शक्ति-हीन होते हुए भी आशातीत उन्नति करके संसार का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने लगा था। अफ़गानिस्तान के शासक अभी तक अमीर कहलाते थे। लेकिन २० फरवरी सन् १९१९ ईस्वी में अमानुल्ला जब अफ़गानिस्तान की गद्दी पर बैठे तो उन्होंने अमीर शब्द को एक गुलामी का चिन्ह समझकर उसे उड़ा दिया और उन्होंने अपने को बादशाह घोषित किया। अमानुल्ला का जन्म पहली जून सन् १७९२ ई० में हुआ था। आप एक बड़े परिश्रमी, उन्नतिशील और राष्ट्रवादी व्यक्ति थे। सुधारक और उन्नत विचारों में आप सबसे आगे रहते थे। फ्रेंच, तुर्की, उर्दू, फ़ारसी और अंग्रेजी भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। देश की उन्नति और उसके आत्मोद्धार के लिये आपने बड़ी लगन से काम किया। आपकी यूरोप यात्रा में प्रायः सभी राष्ट्रों ने बड़ा ही शानदार स्वागत किया था, जिससे संसार में उनकी गणना भी महान् पुरुषों में होने लगी। यूरोप यात्रा का मुख्य उद्देश यही था कि विभिन्न प्रकार के राजनैतिक वातावरण का अनुभव प्राप्त करना। इस अनुभव से उन्होंने देश में सुधारों का एक भयंकर तूफान खड़ा कर दिया था। बादशाह अमानुल्ला ने कहा था—"कि अफ़गानिस्तान संसार के राष्ट्रों से पीछे नहीं रहना चाहता। वह सभी प्रकार के साधनों से और वैज्ञानिक तथा सामाजिक तरीकों से उन्नति की ओर बहुत शीघ्र आगे बढ़ेगा।"

सादगी-जीवन

सन् १९२२ ई० में प्राचीन रूढ़ियों को तोड़कर राज-तन्त्र शासन

प्रणाली उठा दी और प्रजा सत्तात्मक राज्य-प्रणाली प्रचलित की। पुरानी प्रथाएँ और उन्नति में बाधा देने वाले रस्म और रिवाजों को कब्रों में दफना दिए। आपने मजहबी दुनियाँ में एक बड़ी हलचल पैदा कर दी और एक क्रांतिकारी योजना दीन और दुनियाँ के आगे रक्खी। यह वह क्रांतिकारी समस्या थी, जिसे मुसलिम अराष्ट्रीवादी कभी भी स्वीकार नहीं कर सक्ते थे। बादशाह ने यूरोप जाते समय बेगम सूरिया का बुर्का जिसे अब तक वे धारण किये हुए थीं, उतरवा कर फेंकवा दिया। बेगम-सूरिया, खुले मुँह जहाज़ पर सवार हुईं। वे एक आज़ाद-महिला की तरह सबसे मिलने-जुलने लगीं और उन्होंने स्वतन्त्रता-पूर्वक यूरोप की यात्रा की। बेगम-सूरिया अमानुल्ला की तरह ही उन्नतशील विचारों की महिला हैं। उन्होंने कई बार परदे की प्रथा उठा देने के लिये अपने जोरदार विचारों को प्रकट किया था। इन विचारों से आपकी बुद्धि-विलक्षणता, और विशाल-स्वातंत्र्य-हृदय का परिचय मिलता है।

बादशाह अमानुल्ला के व्यक्तिगत जीवन में, सादगी और उनकी दिनचर्य्या का विलक्षण आकर्षण है। प्रातःकाल उठकर आपको पैदल टहलने की आदत अब भी है। घूमने के लिये उनका कोई निश्चित स्थान नहीं। कभी-कभी शहर की तंग गलियों में भी घूमने निकल जाते थे। इस प्रकार घूमने से उन्हें शहर के वायुमण्डल का भी पता चल जाता था। प्रजा की तकलीफ़ और अधिकारियों के इन्तज़ामों की जाँच वे घूम-फिर कर ही कर लेते थे। घूमकर आने के बाद वे थोड़ा-सा जलपान करते और फिर राजकार्य में व्यस्त हो जाते थे।

सुबह आठ बजे से लेकर बराबर ६ बजे तक वे राजकार्य में लगे रहते थे। इस बीच में दो बार ही जलपान करने को उठते थे । आप का भोजन बड़ा ही सादा होता था । फलों से आपको विशेष रुचि थी, और वही अधिक मात्रा में खाया करते थे । ६ बजे के बाद आप टेनिस खेलकर हवाखोरी को निकल जाते थे । रास्ते में हरएक गरीब आदमी की शिकायत सुनते और बहुतों को मोटर पर ही पास बिठाकर उनसे बातचीत किया करते थे। रास्ते में अगर कोई थका-मांदा मुसाफिर मिल जाता था, तो उसे स्वयं उसके घर पहुँचा आते थे। आपकी मिलनसारी, मीठी-मुस्कान और मृदु वाणी ने अफ़गानिस्तान में प्रेम और शांति का एक अपूर्व वातावरण उत्पन्न कर दिया था। अफ़गान बादशाह के इस प्रजावत्सलता पर हजारों मुग्ध थे । दिन में आप कभी भी उस राजमहल में जहाँ महारानी-सूरिया का निवास स्थान था नहीं जाते थे । शाम को जब हवाखोरी से लौटते तो सीधे राजमहल में जाकर महारानी के साथ भोजन करते थे। एशियाई और यूरोपीय राजाओं की अपेक्षा आप में विशेष महानता थी । आप एक मामूली गरीब अफ़गान की तरह जीवन व्यतीत करते थे। आपका दाम्पत्य-जीवन बड़ा कोमल, सरस और मनोरंजक है । इस समय आपको चार पुत्रियाँ और तीन पुत्र हैं ।' आप के जीवन की सुंदर और महान् विशेषताएँ, वर्तमान् राजाओं और महाराजाओं के लिये विशेष अनुकरणीय हैं।

कवानीन-मुल्की

अभी तक दस्तूर-शाही-ज़िरगा, जो एक मजहबी सभा थी और

बादशाह के शासन-विधानों में तथा मुल्की इन्तजाम में सलाह दिया करती थी, उसे बादशाह अमानुल्ला ने तोड़कर पार्लियामेन्ट के रूप में बदल दिया। पहले जिरगा में चुनाव की प्रथा नहीं थी,। मुल्क के खास-खास मजहबी मौलवी आदि इस जिरगे में शामिल होते थे। लेकिन बादशाह ने इसे भी बदल दिया। अपनी असेम्बली में १२० प्रतिनिधियों को रक्खा, और प्रति तीन वर्ष के बाद चुनाव की प्रथा जारी कर दी। प्रांतीय विभाजित-विभाग भी बना दिये गए, और प्रत्येक प्रांत में अलग-अलग गवर्नर नियुक्त कर दिये गए। छोटी-मोटी अदालतों के सिवा, काबुल में एक जंगी-अदालत और हाईकोर्ट भी खोल दिया गया। सप्ताह में एक दिन बादशाह भी प्रजा की फरियादें और शिकायतें सुनते थे। लेजिस्लेटिव असेम्बली को कवानीन मुल्की कहते हैं। लेजिस्लेटिव असेम्बली के ऊपर स्टेट कौंसिल भी बनाई गई। तमाम देश के भिन्न २ विभागों का उत्तरदायित्व मंत्रियों के हाथों में सौंप दिया गया। ये मंत्री अपने-अपने कार्य के पूर्ण जिम्मेदार होते थे। स्वयं बादशाह मंत्रि-मंडल और असेम्बली के सभापति थे। इस तरह बादशाह अमानुल्ला ने अपने देश का शासन नवीन ढंग से आरम्भ किया। प्रत्येक विभाग के मंत्रियों को बादशाह से मिलने का दिन नियुक्त था। उन दिनों में मंत्रिगण, अपनी सारी रिपोर्टें बादशाह के सामने पेश करके उनसे राय लेते और अपनी सलाह भी देते थे। इन नवीन शासन-विधानों को प्रचलित करने और नए ढंग से शासन को चलाने के लिये बादशाह को कई मुसीबतों का सामना करना पड़ा। सबसे बड़ी मुसीबत तो यह थी, कि अमानुल्ला

की कार्य-प्रणाली को देखकर अंग्रेज़ सरकार घबरा उठी। अभी तक अंग्रेज़ सरकार अफ़गानिस्तान को १८ लाख रुपया देकर अफ़गानिस्तान का संरक्षण करती थी। वैदेशिक मामलों में अभी तक अफ़गानिस्तान को दखल देने का अधिकार नहीं था। अंग्रेजों की संरक्षण-नीति का यही आशय था, कि अफ़गानिस्तान को १८ लाख रुपयों में सदा के लिये गुलाम बना रखा जावे। परन्तु बादशाह अमानुल्ला ने तख्त पर बैठते ही इन १८ लाख रुपयों पर लात मार दी और अपनी पूर्ण स्वतंत्रता घोषित कर दी। दूसरे राष्ट्रों ने अमानुल्ला की पूर्ण स्वाधीनता स्वीकार कर ली। सन् १९१९ ई० में रूस ने अफ़गानिस्तान से बराबरी के अधिकार पर संधि कर ली, जिससे भारत सरकार के हृदय में एक नया भय उत्पन्न हो गया।

अफ़गानिस्तान पर चढ़ाई

उपरोक्त संधि अंग्रेजों को इस तरह खटकी, कि उन्होंने उसी समय अफ़गानिस्तान पर चढ़ाई कर दी। हवाई जहाजों से लैस एक जंगी बेड़ा काबुल की तरफ़ भेजा गया। सरहद्दी छावनी पर अंग्रेजी फौजों का तांता-सा बंध गया। अफ़गानिस्तान में हवाई जहाजों से गोले बरसाये जाने लगे। पर अमानुल्ला की संगठित शक्ति और नवीन जागृति को कुचल डालना कोई साधारण बात नहीं थी। अफ़गानी लोगों ने अंग्रेजों का डटकर मुकाबला किया। उस समय समस्त संसार की सहानुभूति अमानुल्ला के साथ थी। स्वयं ब्रिटिश-भारत ने अमानुल्ला के प्रति सहानुभूति प्रकट की थी। इसी समय भारत में असहयोग आंदोलन शुरू हुआ। जलियानावाला कांड और खिलाफत आदि के मामले

में भारतीयों के रुष्ट हो जाने से सरकार की स्थिति डाँवाडोल हो गयी। परिस्थिति को भयंकर देख अंग्रेज सरकार ने २२ नवम्बर सन् १९२१ ई० को अफगानिस्तान से संधि कर उसकी पूर्ण स्वतंत्रता स्वीकार कर ली। संधि-पत्र में स्वतंत्र राष्ट्र के नाते काबुल-लंदन-कराँची और जलालाबाद में अफगानी अफसर और राजदूत नियुक्त करने की बात भी स्वीकार की गई।

इसके बाद अमानुल्ला खाँ ने संसार की राजनीति में अपना प्रभाव जमाना आरम्भ किया। ईरान, फ्रांस और टर्की से मित्रतापूर्ण-संधियाँ स्थापित कर लीं। इन राष्ट्रों ने भी अफगानिस्तान की पूर्ण स्वाधीनता स्वीकार कर ली। नतीजा यह हुआ कि कल का एक छोटा सा राष्ट्र, संसार के बड़े-बड़े राष्ट्रों में समानता और शान के साथ बैठने लगा। अमानुल्ला खाँ ने अपने राजदूत, मास्को, बर्लिन और पेरिस आदि में नियुक्त कर दिए।

अमानुल्ला खाँ और राष्ट्र-संघ

राष्ट्र-संघ की महत्ता को स्वीकार करते हुए बादशाह ने कहा— "मैं राष्ट्र-संघ की महत्ता स्वीकार करता हूँ, और वह इसलिये कि उससे संसार के राष्ट्रों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाया जा सके। लेकिन ऐसा भी समझना केवल भूलमात्र होगा कि मैं राष्ट्र-संघ की आधीनता अपने स्वार्थ के लिये स्वीकार कर रहा हूँ। मैं उदार और स्वतंत्र-विचारों का उपासक हूँ। मैं पश्चिम के साम्राज्यवादियों की चालों को भलीभाँति समझता हूँ और यह अच्छी तरह महसूस करता हूँ कि एशिया के परतंत्र राष्ट्र को स्वाधीन बनाने में पूरी मदद करना

उसका परम कर्तव्य है।"

एशिया के प्रधान-राजनीतिज्ञों में अमानुल्ला का सर्वप्रथम स्थान था। जितने आप राजनीतिक विचारों के थे, उससे कहीं बढ़कर समाज-वादी थे। साम्प्रदायिकता के कट्टर विरोधी थे। आपके राज्य में हिन्दू और मुसलमान दोनों को समान अधिकार प्राप्त थे। मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर ज्यादती की आवाजें कभी भी सुनने में नहीं आईं।

बंबई-का व्याख्यान

यूरोप जाते वक्त बंबई का व्याख्यान आपके विशाल हृदय का ज्वलन्त उदाहरण था। हिन्दुस्तानी मुसलमानों को संबोधित करते हुए आपने कहा था—"गोकुशी के संबंध में हिन्दुओं के धार्मिक भावों का ख्याल रक्खो। मुल्लाओं के संकुचित विचारों को तोड़ फोड़कर फेंक दो। पुराने मजहब की रूढ़ियों के प्रति बादशाह का यह भाषण भारतीय मुसलमानों के लिये एक महान्-क्रान्ति की ओर ले जाने वाला इशारा मात्र था। बादशाह इससे ज्यादा और क्या कह सक्ते थे?

नवीन सैनिक-संगठन

अमानुल्ला खाँ का सबसे जबरदस्त प्रोग्राम नवीन ढंग से सेना का संगठन करना था। इस कार्य के लिये कुछ तुर्क अफसरों की नियुक्ति की गई। जर्मन अफसर भी बुलाए गए। देश के प्रमुख स्थानों में फौजी कालेजों की स्थापना करके अफगानी युवकों में फौजी तालीम का प्रबंध किया गया। फ्रांस से पचास हजार राइफलें सिपाहियों के लिये मंगाई गईं। अफगानी जिरगे अर्थात् शाही असेम्बली ने यह एलान किया कि १७ वर्ष से ऊपर के प्रत्येक नौजवान को फौजी-

शिक्षा अनिवार्य होगी, जिसकी अवधि तीन वर्ष होगी । साथ ही यह भी नियम बना दिया कि राज्य के प्रत्येक कर्मचारी को काबुल के फौजी महाविद्यालय में सैनिक-शिक्षा प्राप्त करनी पड़ेगी। फौज में विशेषरूप से सरहद्दी आदमियों को विशेष स्थान दिया गया क्योंकि शस्त्र चलाने में ये बड़े निपुण होते हैं। इनके निशाने और शस्त्र चलाने के नियम इतने अचूक होते हैं कि शायद ही सौ में एक दो निशाने चूकते हों।

इस तरह फौजी कठिनाईयों की समस्या शीघ्र ही हल हो गई । अफ़गानी सेना में विशेष परिवर्तन कर दिये गए, जिससे एशियाई सेनाओं में अफ़गानी सेना अपना एक विशेष स्थान रखने लगी। वायुयान-शिक्षा के लिये जर्मन-अफ़सर नियुक्त थे और कई विद्यार्थी इस शिक्षा के लिये मास्को भेजे गए। जलालाबाद में चार हवाई स्टेशन भी बनाए गए। सन् १६३१ में अफ़गानिस्तान के पास १८ हवाई जहाज़ थे ।

अपने थोड़े से ही समय में अमानुल्ला खाँ ने एक चमत्कारपूर्ण क्रांति से सम्पूर्ण एशिया में हलचल मचा दी। अगर इस महान् व्यक्ति को ईश्वर अफ़गानिस्तान में रहने का थोड़ा और भी अवसर देता, तो वह अपने देश के साथ-साथ उन परतन्त्र देशों को भी पूर्ण-सहायता देता, जो आज विदेशियों द्वारा पददलित किये जा रहे हैं। अफ़गान-नरेश के सिद्धान्तों में आशावाद और आदर्शवाद दोनों थे। अपनी सामाजिक-स्थितियों के सुधारने में तथा उनका रूपान्तर करने में बादशाह को एक बड़ी आफ़त मोल लेनी पड़ी। जिस आदर्शवाद को

लेकर वे राजनीतिक और सामाजिक-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे, वही आदर्शवाद के सिद्धान्त जंगली कौम के लिये एक तूफान बन गये। मज़हबी-फकीरों और मुल्लाओं ने इन सिद्धान्तों के विरुद्ध कार्य करना आरम्भ कर दिया। राजनीतिक-विशारदों का यह अनुमान ठीक हो सक्ता है कि अमानुल्ला खाँ को राजच्युत करने में एक भारी षड़यन्त्र की रचना की गई थी, जिसकी तह में ब्रिटेन का भी हाथ था। लोगों का यह भी कहना है कि लम्बी-लम्बी रकमों पर लोगों को भड़काने के लिये कुछ व्यक्ति नियुक्त किये गये थे। यहाँ तक कि बेगम सूरिया की नग्न तस्वीरें बनाई गईं और उनके जरिये सरहदी और जंगली कौमों को भड़काया गया। यह जबरदस्त प्रोपेगेण्डा बादशाह के यूरोप जाने के बाद किया जाने लगा था। बेगम सूरिया की नग्न तस्वीरें और पश्चिमी-लिबास में व्यभिचारों के अनेक नग्न चित्र अफ़गानी प्रजा को दिखाये गए, जिससे बादशाह के रूप में अमानुल्ला एक शैतान कहे जाने लगे। अब धीरे-धीरे यह आग सुलगने लगी। बेगम सूरिया के परदा प्रथा उठा देने पर प्रजा एक तो पहिले से ही नाराज़ थी, दूसरे इन नग्न चित्रों को देखकर और भी बौखला उठी।

यूरोप से लौटते ही यह तोप का गोला फूट पड़ा। बच्चा-सक्का नामक एक भिश्ती कुछ अफ़गानी और सरहदी मुल्लाओं को साथ लेकर एक भीषण क्रांति कर बैठा। उस समय बादशाह यूरोप से लौटे ही थे और अपने नवीन कार्य-क्रम की योजना में लगे हुए थे कि बच्चा-सक्का ने धीरे-धीरे अपनी शक्ति को बहुत ही दृढ़ बना लिया। मुल्लाओं और मौलवियों के उपदेशों से मुस्लिम-जनता भड़क उठी और एक

विशाल जन-समुदाय बच्चा सक्का के साथ हो गया। उस विशाल जन-समूह को लेकर बच्चा-सक्का ने अफ़गानिस्तान पर चढ़ाई कर दी। बहुत सी बादशाही सेना, बच्चा सक्का की फौज़ से मिल गई। फल-स्वरूप अमानुल्ला खाँ को गद्दी छोड़कर भागना पड़ा। धीरे २ काबुल को फतह कर बच्चा-सक्का अफ़गानिस्तान की गद्दी पर बैठ गया।

अमानुल्ला खाँ के समय की उन्नतिशील-प्रगति

अमानुल्ला खाँ ने देश की आर्थिक दशा पर विशेष ध्यान दिया और बजट में करोड़ों की रकमें पास कीं। कृषि और रसायन के कालेज और स्कूल खोले गए, जिनमें सैकड़ों विद्यार्थी शिक्षा पाने लगे। नवीन ढंग की कृषि और पशुशालाएँ भी खोली गईं। सिंचाई के लिये नहरों की तज़बीजें की गईं। रेलवे लाईन और पक्की सड़कें बनाने के लिये नवीन योजनाएँ तैयार की गयीं और विदेशों से अनेक वैज्ञानिक और इञ्जीनियर बुलाए गए।

टेलीफोन की व्यवस्था प्रायः सभी नगरों में की गई। खास-खास स्थानों और शाही महलों में बिजली का भी प्रबन्ध किया गया। डाँक-विभाग का नए सिरे से संगठन किया गया। जुलाई के अन्त में स्वतन्त्रता-दिवस मनाने का भी एलान किया गया। यह समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया जाने लगा। उत्सव के पहिले दिन बादशाह फौज़ी सिपाहियों और जनता के समक्ष अपने उन वीर सिपाहियों का गुण-गान करते, जिन्होंने सन् १६१९ ईस्वी में अंग्रेजों से लोहा लेकर अपने देश को आज़ाद किया था। यह समारोह पूरे सप्ताह भर होता था। सात-दिन लगातार फौज़ी प्रदर्शन, कवायद, घुड़दौड़ और अनेकों खेलकूद

होते थे। यह उत्सव अफ़गानियों में स्वतन्त्रता-सूचक एक ध्वनि थी, जिससे राष्ट्रीयता की गूँज सारे अफ़गानिस्तान में फैल जाती थी। बहुत से भारतीय भी इस सम्मेलन में भाग लेते थे। दसवें अधिवेशन के समय १०० मुस्लिम-महिलाओं ने भी भाग लिया था, जो यूरोपियन पोशाकें पहिनकर इस सम्मेलन में आई थीं। प्रजा की ओर से अनेकों अभिनन्दन-पत्र दिये जाते थे। बादशाह प्रत्येक अभिनन्दन-पत्र का उत्तर बड़ी ही प्रसन्नता से देते थे। एक अभिनन्दन पत्र के उत्तर में बादशाह ने कहा था—"अफ़गानिस्तान के ऊपर मेरा सर्वस्व निछावर है, लेकिन साथ ही साथ मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि बिना आप लोगों के सहयोग से मेरा उद्देश सफलीभूत नहीं हो सक्ता।"

अमानुल्ला खाँ के नवीन राजनैतिक विकास ने संसार के अन्त-र्राष्ट्रीय-क्षेत्र में एक नवीन स्थान प्राप्त कर लिया था और यह महत्व और भी बढ़ जाता, अगर अफ़गानिस्तान का पतन न होता। अखिल एशियाटिक फेडरेशन का अधिवेशन भी यहीं हुआ, जिससे भविष्य में और भी अमानुल्ला खाँ शक्ति प्राप्त करते।

आर्थिक-समस्या और अमानुल्ला खाँ

देश की आर्थिक स्थिति को हल करने के लिये बादशाह ने अकथ प्रयत्न किए। नवीन उद्योग-धन्धों के लिये कारखाने आदि खोलकर विदेशों से व्यापारिक महत्व-पूर्ण संधियाँ की। सन् १९२१ ईस्वी में भारत के साथ भी एक सन्धि हुई थी। उसमें अफ़गानिस्तान की पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ साथ भारत सरकार से लेन-देन का भी समझौता हुआ था। हिन्दुस्तान से अफ़गानिस्तान रेशम, रूई, चाय, कागज़ आदि

खरीदकर भारत को गलीचे, ऊन, भेड़ों के चमड़े और मेवा आदि भारत को देगा। जर्मनी से भी एक सन्धि हुई, जिसमें जर्मनी ने मोटर के कल-पुर्जे, मशीनें, और रंगाई के सामान आदि भेजने की शर्तें स्वीकार कीं।

घरेलू और उद्योग-धन्धों को काफ़ी प्रोत्साहन दिया गया। समस्त सरकारी कर्मचारियों को देशी जूतों के पहिनने का एलान कर दिया गया। देश के बने हुए कपड़ों को अपनाने के लिये भी बहुत सी रियायतें दी गईं। हथियारों के बनाने के लिये कारखाने खोले गये। उनमें, बन्दूकें, पिस्तौलें और भाले तैयार होने लगे। जापान से भी बहुत से हथियार मँगाये जाने लगे। उद्योग और कला-कौशल के अध्ययन के लिये बहुत से शिक्षित नवयुवक विदेशों में भ्रमण करने के लिये भेजे गए। बहुत सी लड़कियाँ भी विदेशों में अध्ययन के लिये गईं। इस देश में व्याज लेना धार्मिक दृष्टि से हराम है, इससे बैंक आदि की स्थापना में अफ़गानिस्तान का आर्थिक-उत्थान रुका हुआ है। देश की आर्थिक आय ९ करोड़ रुपये से कुछ अधिक है, लेकिन इतना रुपया इतने विशाल साम्राज्य की उन्नति के लिये काफ़ी नहीं है। इससे कुछ विदेशी साहूकारों और पूँजीपतियों को बुलाने की भी एक योजना बादशाह ने बनाई थी, परन्तु इसमें वे काफ़ी सफलता प्राप्त नहीं कर सके।

नवीन-सुधार

यूरोप भ्रमण के बाद ही अमानुल्ला खाँ ने बड़ी ही लगन और दिलचस्पी के साथ सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में हलचल

दी। अपनी उन्नति के लिये अमानुल्ला दीवाना हो रहा था। उसने भविष्य में होने वाली घटनाओं का तिलमात्र भी विचार नहीं किया। धार्मिक जगत् में जिस कारण से हलचल मची थी, उसके कई खास कारण थे। पहिला कारण तो यह था कि अमानुल्ला खाँ ने "जिरगा" याने असेम्बली के सभी सदस्यों को दाढ़ी-मुड़वाने का और टोप लगाकर सभा में आने का हुक्म जारी किया था। दूसरा कारण वह एलान था जिसमें राजनैतिक कानून को प्रधानत्व देकर उसमें धर्म का भेद हटा दिया जाता था। बादशाह ने स्वयं, जिरगा के मेम्बरों को एक बड़े हाल में जमाकर उनकी दाढ़ी-मूँछें मुड़वा दीं, और यूरोपियन पोशाकें पहनने की आज्ञा दी। इस परिवर्तन से सारे देश में हलचल मच गई। अमानुल्ला खाँ इस्लाम के कट्टर विरोधी कहे जाने लगे। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये अफ़गानिस्तान की असेम्बली ने मुल्लाओं और मौलवियों के प्रचार को फौरन रोक दिया। लाइसंस प्राप्त करके ही मुल्ला और मौलवी धर्म का प्रचार कर सक्ते थे। इससे वहाँ के मुल्ला-जगत् में क्रांति उठ खड़ी हुई। ३० मुल्ला गिरफ्तार कर लिये गए। इससे अफ़गानी-जनता और भी बिगड़ गई। अफ़गानिस्तान के पतन और अमानुल्ला खाँ के भागने के यही विशेष कारण हैं।

नादिरशाह

नादिरशाह बादशाह के जेनरल सेनापति थे, और इन्होंने फ़ौज और पल्टनों में काफ़ी सुधार किये थे। इन सुधारों से फ़ौज और पल्टनों के बिगड़ने का भय मालूम होने लगा। अमानुल्ला खाँ ने शीघ्र ही नादिरशाह को फ्रांस में अफ़गानी राजदूत बनाकर भेज दिया।

नादिरशाह होनहार राजभक्त और देशभक्त व्यक्ति थे। अमानुल्ला अपने इस महान् व्यक्ति पर काफ़ी भरोसा रखते थे। नादिरशाह के उच्चतम विचारों ने सैन्य-संगठन में अपूर्व सफलता प्राप्त की थी।

इधर बच्चा-सक्का और उसके साथियों ने जिनमें मौलवी और मुल्लाओं का अधिक ज़ोर था, एक भीषण क्रांति मचा दी। बच्चा-सक्का ने एक जंगी सेना लेकर काबुल पर धावा कर दिया। बड़ी बहादुरी के साथ, शाही सेना ने विद्रोहियों का मुक़ाबला किया, परन्तु उसके आगे बादशाही सेना न ठहर सकी। काबुल को फ़तह कर लेने पर जब बच्चा सक्का की सेना तूफ़ान की तरह आगे बढ़ रही थी, उस समय नादिरशाह फ्रांस में बैठे हुए थे। अपने देश की बग़ावत और अमानुल्ला खाँ के भाग जाने की बात सुनकर उनका हृदय विचलित हो उठा और शीघ्र ही वे वहाँ से रवाना हो गए। भारत के रास्ते से वे शीघ्र अफ़गानिस्तान पहुँच गए। इस समय बच्चा-सक्का काबुल की गद्दी पर बैठकर अपने को बादशाह घोषित कर चुका था। नादिरशाह ने शीघ्र ही बादशाही सेना को संगठित कर बाग़ी सेना के विरुद्ध धावा बोल दिया। नादिरशाह के हाथों में मुट्ठीभर बहादुर सिपाही थे और दूसरी तरफ़ बौखलाई हुई विद्रोही सेना।

नादिरशाह बड़ी बहादुरी के साथ आगे बढ़े। शाही फ़ौज ने अपनी विजय-पताका काबुल पर फहरा दी। बच्चा-सक्का गद्दी से उतार दिया गया और सब अपने साथियों के गिरफ़्तार कर फाँसी पर लटका दिया गया। अब नादिरशाह अफ़गानिस्तान की गद्दी पर बैठे। नादिरशाह के गद्दी पर बैठते ही, अमानुल्ला खाँ के पक्ष के लोग बिगड़ उठे। लेकिन

एक ओर नादिरशाह अमानुल्ला खाँ को गद्दी पर फिर से बैठाने का आश्वासन देते रहे और दूसरी ओर घोर दमन आरम्भ कर दिया। इस विश्वासघात से काबुल की जनता, जो बहुमत से अमानुल्ला खाँ के पक्ष में थी, धीरे-धीरे बिगड़ उठी। नादिरशाह ने इस आन्दोलन को विश्वास और शान्तिमय उपायों से दबा दिया। जनता शान्त हो गई और उसने नादिरशाह की आधीनता स्वीकार कर ली।

अमानुल्ला इस समय अपनी बेगम के साथ यूरोप में निकल भागे थे। नादिरशाह की इस विजय से उनके हृदय में भी आशा का कुछ संचार हुआ और उन्हें एक बार फिर अपने देश को अपनी आँखों से देखने की अभिलाषा उत्पन्न हो उठी। लेकिन कुछ दिनों के बाद जब ससार के सामने नादिरशाह बादशाह के रूप में प्रकट हुए तो अमानुल्ला की सारी अभिलाषाओं और उठती हुई तरंगों पर पानी फिर गया। अमानुल्ला ने अपने देश को अन्तिम नमस्कार किया।

अमानुल्ला खाँ के बहुत से ऐसे पक्षपाती थे, जो दिल ही दिल में जले-भुने हुए थे, और किसी खास अवसर की तलाश में थे। थोड़े ही दिन बाद किसी विद्रोही ने नादिरशाह को उनके महल में कत्ल कर डाला। खूनी शीघ्र ही पकड़ा गया। इस तरह अफ़गानिस्तान की आशातीत उन्नति जो विश्व के गगन-मंडल में ताराओं की भाँति चमक रही थी, अब अन्धकारपूर्ण रजनी में विलीन हो गई।

अब अफ़गानिस्तान का अभ्युदय कब और कैसे होगा, यह भविष्य के गर्भ में है।

संसार की महान् आत्माएँ

डीवेलेरा, रजाशाह पहलवी

और जुगलुलपाशा

"वीर डीवेलरा"

अंग्रेजों के फौलादी पंजे से आयर्लैण्ड का उद्धार करने वाले डी वेलेरा का नाम संसार के इतिहासों में सदा अमर रहेगा। सन् १८६९ ईस्वी में आयर्लैण्ड नवयुवक-समिति का संगठन हुआ। इस समिति का मुख्य उद्देश था आयर्लैण्ड में राष्ट्रीय जाग्रति करना। इस समिति ने शीघ्र ही आयर्लैण्ड में नवजीवन का संचार किया। दूसरी तरफ़ ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य, समिति के इस बढ़ते हुए कार्य को बड़ी ही गृद्ध-दृष्टि से देख रहे थे। इसी समय आयर्लैण्ड से "यूनाइटेड-आयरिश मैन" नाम का पत्र निकाला। इस पत्र के द्वारा समस्त आयरिश समितियों का उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ता गया। सन् १९०५ ई० में समस्त आयरिश-संघ और समितियाँ एक नवीन कैबिनेट में बदल दी गईं

और इसका नाम सिनफिन-दल रक्खा गया। इस महान् समिति का नाम (*National Council*) रक्खा गया। सिनफिन आन्दोलन समस्त आयर्लैंण्ड में फैल गया। इस तरह देश में एक नवीन राजनीतिक क्षेत्र तैयार किया गया, जिसके संचालक थे डीवेलेरा। इस राजनैतिक दल में एक दल युवकों का ऐसा भी था, जो ब्रिटेन से बिलकुल ही सम्बन्ध-विच्छेद करना चाहता था। इस दल का नाम था "सेपरेटिस्ट" (*Seperatist*)। यह दल ब्रिटेन के विरुद्ध भयंकर क्रांति की आयोजना में था।

इधर अंग्रेज सरकार भी डीवेलेरा के कार्यों की तरफ से बेख़बर न थी। उसने प्रजातन्त्रवाद को कुचलने के लिये अलस्टर में स्वयंसेवकों की एक सशस्त्र सेना तैयार की। उस के विरुद्ध डिवेलरा ने भी एक नवीन स्वयंसेवक दल का संगठन कर उन्हें सैनिक शिक्षा देने का आयोजन किया। उन्होंने विदेशों से हथियार भी मँगाए, लेकिन अंग्रेजों ने इसमें रुकावटें डालकर हथियारों का आना बन्द कर दिया। सन् १९१४ में जब यूरोपीय महायुद्ध छिड़ चुका था, उस समय आयरिश प्रजातन्त्रवादियों का उत्साह द्विगुणित हो गया। इस समय इङ्गलैण्ड ने अपनी अधिक से अधिक शक्ति आयरलैण्ड के दबाने में लगा दी। लेकिन आयरिशों ने शीघ्र ही एक नवीन योजना को स्थान दिया—वह योजना थी (*Republican Brotherhood*)। इस संस्था के संचालक भी डीवेलेरा थे। यह संस्था भी एक गुप्त संस्था थी। ये सभी भीषण क्रांति करने के पक्षपाती थे। सन् १९१६ के २३ अप्रैल को आयरलैण्ड से अंग्रेजों का फौलादी पंजा तोड़ देने का निश्चय किया गया। देश की

सभी समितियाँ इसमें भाग लेने के लिये आगे बढ़ीं। इस समय, वीर-डीवेलेरा अपने सशस्त्र (सैनिकों) स्वयंसेवकों को लिये हुए बोलेण्ड-मिल्स के पास डटा था। उसने स्वयंसेवकों से कहा—

"बहादुरों! तुम्हें एक ही जीवन जीना है और एक ही मौत मरना है। ध्यान रहे कि ये दोनों काम मनुष्यों की तरह होना चाहिये।"

डीवेलेरा के इस छोटे से शब्दों ने मुट्ठीभर स्वयंसेवकों को ब्रिटिश-सेना के मुकाबले में छोड़ दिया। स्वयंसेवक ब्रिटिश सेना का सामना अपनी शक्ति भर करते रहे। अन्त में कार्य-क्रम में कुछ परिवर्तन होने के कारण डीवेलेरा ने युद्ध बन्द कर दिया। इस युद्ध में डीवेलेरा के साथ आयरिश वीरांगना श्रीमती काउन्टेन्स मारकोज भी बड़े साहस से लड़ी। लेकिन अंग्रेज़ों के जंगी तोपखानों के सामने सभी को आत्म-समर्पण करना पड़ा। डीवेलेरा और मारकोज आदि सभी गिरफ्तार कर लिये गए। इन्हें फाँसी पर चढ़ा देने का हुक्म दिया गया, परन्तु बाद में ये सजाएँ आजन्म कारावास के रूप में बदल दी गईं। सन् १९१६ ईस्वी के बड़े दिनों में इन सब षड्यन्त्रकारियों को आम रिहाई दे दी गई। अंग्रेजों ने सोचा था कि इस रिहाई से उग्रता दब जायगी, पर परिणाम उल्टा हुआ। डीवेलेरा ने छूटते ही प्रजातन्त्रवाद का घोर आन्दोलन आरम्भ कर दिया।

सन् १९१७ ई० के सितम्बर मास में सिन-फिन (*Senfin*) दल का एक भारी अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में डीवेलरा आयरिश-राष्ट्रपति घोषित किये गये। इस समय अंग्रेज जर्मनी

से भीषण संग्राम कर रहे थे। अंग्रेज सरकार को रँगरूटों की अधिक आवश्यकता थी। उसने आयरिश-नवजवानों को सेना में भरती करना चाहा। डीवेलेरा ने इसका घोर-विरोध किया और एक भी नवयुवक को सेना में भरती न होने दिया। उसने अमेरिकन राष्ट्रपति विल्सन को एक आवेदन-पत्र भेजा जिसमें स्पष्टतः लिख दिया कि आयर्लैण्ड कभी भी ब्रिटिश-सत्ता स्वीकार नहीं करेगा। यह आवेदन-पत्र लिखकर तैयार किया ही गया था कि डीवेलेरा और उनके सभी साथी पकड़कर इङ्गलैण्ड के कारागार में बन्द कर दिये गए। उनपर यह अभियोग लगाया गया कि ये जर्मनी से मिलकर षड्यन्त्र कर रहे थे।

सन् १९१८ में इङ्गलैण्ड में पार्लियामेंटरी चुनाव की धूमधाम हुई, जिसमें आयर्लैण्ड का "सिनफिन दल" भी घुस गया। इसके प्रयत्न से डीवेलेरा लन्दन की जेल से छूटकर आ गए। सन् १९१९ के जनवरी मास में डबलिन के "मेन्सन हाऊस" में एक अधिवेशन किया गया। इस अधिवेशन में राष्ट्रीय पार्लियामेण्ट बनाने की घोषणा कर आयरलैंड की पूर्ण स्वतन्त्रता घोषित की गई। घोषणा में यह कहा गया, कि—"आयर्लैण्ड एक स्वतन्त्र देश है।" शासन-सम्बन्धी समस्त अधिकार राष्ट्रीय-पार्लियामेण्ट के अधिकार में आ गए। इस राष्ट्रीय-पार्लियामेंट के प्रधान डीवेलेरा ही चुने गए। इसी समय प्रजातन्त्रवाद का कार्य आगे चलाने के लिये डीवेलेरा अमेरिका गए और पर्याप्त धन एकत्रित कर वापस आये। इधर अंग्रेजों से आयरिशों का भीषण युद्ध छिड़ गया। सन् १९२० ई० में जब डीवेलेरा-अमेरिका से धन लेकर लौटे तब आयर्लैण्ड के एक दूसरे नेता मेक्सविनी की मृत्यु हो चुकी

थी। इस युद्ध में ब्रिटेन ने डीवेलेरा से सन्धि-चर्चायें शुरू कीं। सन् १६२१ ई० के मध्य में ऐङ्गलो-आयरिश-अधिवेशन हुआ, जिसमें डीवेलेरा ने यही सन्देश दिया कि आयलैंण्ड को पहिले स्वतन्त्र-राष्ट्र समझा जावे, तब कहीं सन्धि की शर्तें होंगी। इङ्गलैण्ड के प्रधानमन्त्री लायडजार्ज के पास भी डीवेलेरा ने एक तार भेजकर यह घोषित कर दिया था, कि शासितों की कृपा पर सरकार स्थापित नहीं होनी चाहिए, परन्तु लायड-जार्ज ने इसकी परवाह नहीं की। आयरिश प्रतिनिधि इंगलैण्ड बुलाए गए, परन्तु डीवेलेरा ने जाने से अस्वीकार कर दिया। बहुत वादा-विवाद के पश्चात् सन्धि-चर्चायें फिर भंग कर दी गईं क्योंकि ब्रिटेन अपना पंजा किसी भी तरह आयलैंण्ड से उठाना नहीं चाहता था।

अब डीवेलेरा ने फिर जोरों के साथ युद्ध की तैयारियाँ शुरू कर दीं। इसबार संग्राम में डीवेलेरा की सेना ने घमासान युद्ध कर अंग्रेज सरकार के छक्के छुड़ा दिये। यद्यपि डीवेलेरा के कई विश्वास-पात्र नेता उनका पक्ष छोड़कर अंग्रेजों से जा मिले थे, तथापि सन् १६२२ ई० के जून मास में डबलिन की समस्त बड़ी-बड़ी इमारतों और होटलों पर राष्ट्रीय-सेना ने अधिकार जमा ही लिया। डीवेलेरा ने इमारतों पर इस तरह मशीनगनों की वर्षा की कि अंग्रेजी-सेना स्तब्ध रह गयी। कोर्टस् फोर नाम की विशाल इमारत पर घमासान् युद्ध हुआ। डीवेलेरा अपनी मुट्ठीभर सेना के साथ अद्भुत रण-कौशल दिखा रहा था। अन्त समय तक वह अंग्रेजों से लोहा लेता रहा। इस भीषण युद्ध में रोमी, ओकनोर, इर्सकिन आदि ने अपूर्व रणचातुरी दिखाकर प्रजातन्त्र के इतिहासों में अपना नाम अमर कर दिया।

इस भीषण युद्ध से अंग्रेज सरकार बहुत घबरा गई। उसने प्रजातन्त्रवादियों को परास्त करने के लिये आयर्लैण्ड पर हवाई जहाजों से बम-वर्षा करनी आरम्भ कर दी। डीवेलेरा तब भी हताश नहीं हुआ। आयरिश निशानेबाज़ों ने कई अंग्रेजी हवाई जहाजों को नीचे गिरा दिया। लायड जार्ज ने सभी तरह से निराश होकर आज्ञा दी कि "अपनी समस्त शक्ति प्रजातन्त्रवादियों को दबाने में लगा दो।"

इस भीषण संग्राम से डीवेलेरा कुछ हताश होने लगा था क्योंकि उसके बहुत से बहादुर सिपाही और साथी इस युद्ध में काम आ चुके थे। ३० अप्रैल सन् १९२६ ईस्वी को डीवेलेरा ने युद्ध रोकने की घोषणा की। डीवेलेरा की तरफ़ से युद्ध बन्द कर दिया गया, परन्तु अंग्रेजों और उसके पिट्टू साथियों ने युद्ध बन्द नहीं किया। फ्री स्टेट की सरकार जो अंग्रेजों के अधीनस्थ थी, बराबर प्रजातन्त्रवादियों पर गोलियों की वर्षा कर रही थी।

युद्ध बन्द करने के बाद डीवेलेरा महीनों पहाड़ों में छिपा रहा और अपने बचे हुए सहयोगियों को परामर्श देता रहा तथा अंग्रेजों को भयभीत करता रहा। उसकी गुप्त-सभायें अब इमारतों में न होकर पहाड़ों की गुफ़ाओं में होने लगीं। वह हर तरह के उपायों से आयर्लैण्ड को अंग्रेजों के फौलादी पंजे से मुक्त करने की चिन्ता में व्यस्त था। डीवेलेरा ने अब शांति-मय उपायों से कार्य करना उचित समझा। क्योंकि इस भीषण युद्ध में वह अपार धन-जन का स्वाहा कर चुका था। अगस्त के महीने में फ्रीस्टेट-आयर्लैण्ड का चुनाव हुआ। डीवेलेरा ने इस चुनाव में भाग लेने की घोषणा की। महीनों तक पहाड़ों की

खाक छानता हुआ वीर, मोटर पर सवार होकर चुनाव की महती सभा में आ उपस्थित हुआ। वह व्याख्यान देने वाला ही था, कि सैनिकों ने धुआँधार गोलियाँ चलानी आरम्भ कर दीं। डीवेलेरा अब निराश हो चुका था। उसने आत्म-समर्पण कर दिया। सेना उसे गिरफ्तार कर बैरिक में ले गई और वहाँ उसे कारागार में डाल दिया। इस गिर-फ्तारी से लण्डन में बड़ी-बड़ी खुशियाँ मनाई गईं। डीवेलेरा के पकड़े जाने के बाद उसका १२ वर्ष का बच्चा डबलिन की एक सार्वजनिक सभा में आया और उसने बड़े ही जोशीले शब्दों में एक छोटी सी वक्तृता दी। इस वक्तृता से जनता में एक बार फिर जोश उमड़ पड़ा परन्तु नेता के अभाव ने उनके जोश को वहीं ठंडा कर दिया।

डीवेलेरा को ८ महीने जेल में रखकर छोड़ दिया। इस बार छूटने पर उन्होंने युद्ध की नीति का अवलम्बन न कर शान्तिमय-मार्गों का अवलम्बन किया। उनका आन्दोलन अब भी जारी है और आज भी वह विदेशी सत्ता को सदा के लिये नष्ट कर देने में प्रयत्नशील हैं।

आज उनके पुराने साथी उनके साथ नहीं हैं, पर डीवेलेरा आज जीवित है, और उसका अमर आन्दोलन आयर्लैण्ड के बच्चे २ में हिलोरें मार रहा है। इतिहास-लेखकों का यह कथन सत्य है कि वीर डीवेलेरा संसार के उन वीर योद्धाओं में से है, जिन्होंने शत्रुओं को कभी भी पीठ नहीं दिखलाई। डीवेलेरा ने राणाप्रताप की तरह लंदन की शाही सेना के नाकों चने चबवा दिये। अंग्रेजी पत्र उसे उस समय (*Dare Devil Develara*) लिखा करते थे, लेकिन आज वह आयर्लैण्ड का भाग्यविधाता और संसार-प्रसिद्ध महान् व्यक्ति है।

रज़ाशाह-पहलवी

रज़ाशाह पहलवी का जन्म ६२ साल पहिले सन् १८७७ ई० में इस्तफहान की साधारण कुटिया में हुआ था। आप एक गड़रिये के लड़के थे और भेड़ें चराते थे। पर भेड़ें चराने में इनकी तबियत ही नहीं लगती थी ! भेड़ें चराते समय पहलवी के हृदय में एक प्रबल इच्छा उठती थी, कि मैं किसी दिन फारस का शाह बनूँगा। आप अपनी माता क बड़े ही आज्ञाकारी पुत्र थे। माता की आज्ञा से ही ये इस्तफहान में नौकरी करने लगे। कुछ समय के बाद भाग्य ने पल्टा खाया। यह सैनिक-रूप में जनता के सामने आये। थोड़े ही दिनों में रजाशाह ने अपने अपूर्व उत्साह और कार्यपटुता से फौजी कमांडर का पद प्राप्त कर लिया ! इस समय फारस की नैतिक स्थिति बहुत ही भयंकर थी। चारो तरफ विद्रोह की आग फैल रही थी। रजाशाह ने बड़ी बुद्धिमानी से इस विद्रोह को दबाकर विद्रोहियों को अपने पक्ष में कर लिया। फारस के शाह ने शीघ्र ही राज़ाशाह को मंत्री पद पर नियुक्त कर दिया। एक तरफ समस्त विद्रोही रज़ाशाह के आधीन थे, दूसरी तरफ आप प्रधान मंत्री थे। इस तरह दोनों ओर आपकी हुकूमत थी। परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही आंदोलन से रज़ाशाह फारस के सर्वेसर्वा बन गए।

इस क्रांति में दूसरे राष्ट्रों की तरह खून की नदियाँ नहीं बहाई गई। यह रज़ाशाह की ही बुद्धिमानी थी। थोड़े ही समय में फारस में जनसत्तात्मक-शासन की घोषणा कर दी गई। रज़ाशाह पहलवी प्रजा-

तंत्रवाद का पहला प्रेसिडेण्ट घोषित हुआ। समस्त फारस ने दिल खोलकर रज़ाशाह का हृदय से सहयोग दिया।

रज़ाशाह २४ घंटे में एक बार भोजन करते हैं और सिर्फ ४ घंटे सोते हैं। आप परदा प्रथा के घोर-विरोधी हैं। अपने देश से परदा प्रथा को उठा देने के लिये आपने काफी प्रयत्न किए। कमालपाशा की तरह आपने मुल्क से तमाम कौमी बुराईयों और अंध-विश्वासों को दूर कर दिया। रज़ाशाह ने चार विवाह किये, जिनसे ६ पुत्र हुए। इस्लामी संसार में रज़ाशाह ने प्राचीन रूढ़ियों के हटाने में जो अद्भुत कार्य किए हैं, उसने मुस्लिम जगत को चकाचौंध में डाल दिया। मुसोलिनी और हिटलर की तरह आपकी रक्षा का भी विशेष प्रबन्ध है क्योंकि रूढ़िवादियों की तरफ से आपको अभी भी जान का खतरा बना रहता है।

जुगलुल पाशा

जगलुल पाशा मिसर के उद्धारकर्त्ता थे। आपका जन्म सन् १८४० ईस्वी में एक किसान के घर हुआ था। अपने गाँव की पाठशाला में पढ़ने के बाद आपने अज़हर के विश्व-विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। जगलुल ने नौकरी करने की अपेक्षा, अपना सार्वजनिक जीवन व्यतीत करके स्वतंत्र-रहना ही अच्छा समझा और उन्होंने सर्वप्रथम "आफि-शियल जर्नल" नामक एक पत्र का संपादक बनना स्वीकार किया। इसके बाद आपने बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त की। लेकिन इस पेशे में आपकी तबियत नहीं लगी। इसके बाद मिसर के मन्त्री मुस्तफा-

फहमी की पुत्री के साथ आपने विवाह कर लिया।

सन् १८७२ ईस्वी में अंग्रेजों ने मिसर पर अधिकार कर लिया। जगलुल ने इसके प्रति दृढ़-आन्दोलन उठाया। अंग्रेजों ने जगलुल को जेल में बन्द कर दिया। अंग्रेज जगलुल को अपने पंजे में फँसाकर उसे अपने पक्ष में मिला लेने के घोर प्रयत्न में थे। जेल से छूटने पर जगलुल को जज का पद दिया गया। सन् १९०६ में आप शिक्षामंत्री बना दिये गए और सन् १९१४ ई० में आप व्यवस्थापक सभा के सहकारी सभापति नियुक्त किये गए। यूरोपीय महासमर के बाद, जिस तरह भारत को अंग्रेजों ने रौलेट-बिल, विजय के पुरष्कार में दिया था, उसी तरह मिश्रवालों की तमाम आशाओं पर भी पानी फेर दिया गया था। मिश्रवालों ने इस विश्वासघात के प्रतिरोध में अपना स्वतंत्र-आंदोलन जोरों के साथ उठाया। जुगलुल ने सन् १९१८ ई० में पूर्ण स्वाधीनता आंदोलन का श्रीगणेश किया। १८ वीं और १३ वीं अप्रैल को आपने इङ्गलैंड जाने के लिये पासपोर्ट माँगा। लेकिन सरकार ने जाने की अनुमति नहीं दी। अब जुगलुल ने मित्र-राष्ट्रों के समक्ष अपनी माँगें रखने के लिये अनुमति लेनी चाही, पर अंग्रेजों ने इसे भी अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार बार २ अस्वीकार करने पर, जुगलुल ने मिसर में जोरदार आंदोलन और विरोध प्रदर्शन आरम्भ किये। इससे अंग्रेजों ने जुगलुल को सन् १९१८ ई० में माल्टा में निर्वासित कर दिया। इस निर्वासन से आंदोलनकारियों ने और भी ज़ोर पकड़ लिया। फलस्वरूप जुगलुल छोड़ दिये गए, और मिसर को कुछ सुधार देने के लिये मिलनर कमीशन बैठाया गया।

जुगलुल ने इस कमीशन का ज़ोरों से बायकाट किया। सन् १९२१ ई० में जुगलुल फिर से गिरफ्तार करके सिंघाली द्वीप भेज दिये गए। सन् १९२३ ईस्वी के अप्रैल मास में नवीन-सुधार दिये गए और जुगलुल छोड़ दिये गए। पर मिसर वाले आज तक इन शासन सुधारों से संतुष्ट नहीं हुए हैं। मिसर का आंदोलन अब भी चल रहा है। जुगलुल, मिसर की महान् आत्मा थे। इस समय यद्यपि जुगलुल संसार में नहीं हैं तथापि उनकी देशभक्ति से परिपूर्ण महान् आत्मायें मिसर के राजनैतिक संसार में अपना कार्य कर रही हैं। इस समय मिसर के राष्ट्रीय-आंदोलन के सर्वेसर्वा नहसपाशा हैं।

भारतीय त्रिपुरी-कांग्रेस के अधिवेशन पर मिसर से भी एक प्रतिनिधि मंडल आया था, जिसने भारतीय आंदोलन के साथ अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट की थी। यह प्रतिनिधि मंडल दिल्ली में महात्मा गांधी से मिला। महात्मा गांधी ने अपना दिव्य संदेश मिसर के राष्ट्रीय नेता नहसपाशा के पास भेजा। नहसपाशा ने महात्मा-गांधी के साथ भी अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट की।

संसार की भीषण राज्यक्रान्तियाँ

संसार का ऐसा कोई देश नहीं, जिसने पराधीनता के बन्धन से मुक्त होने का प्रयत्न न किया हो। इस प्रयत्न में आजादी के दीवानों ने कैसी २ भीषण और रोमाञ्चकारी विपत्तियों का सामना किया और किस वीरता के साथ अपने प्राणों को हथेली पर रख कर स्वतंत्रता की बलिवेदी पर आहुतियाँ दे दीं, इसका रक्तसावित इतिहास पढ़कर आप रोमाञ्चित हो उठेंगे। इस पुस्तक में संसार के छोटे बड़े पराधीन देशों की, स्वतंत्रता प्राप्त करने की मनोहर कथायें संगृहीत हैं। पुस्तक को एक प्रकार से संसार का संक्षिप्त इतिहास कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ में आपको मिलेगा—पद-पद पर खूरेजियाँ, देश-निर्वासन और फाँसी के दिल दहलाने वाले दृश्य—भीषण अग्निवर्षा के बीच देश के दुलारों का पतंग की भाँति जूझ मरना आदि।

भारतीय नवयुवकों में स्वतंत्रता का मंत्र फूँक देने मे यह पुस्तक पर्याप्त सहायता देगी। सचित्र पुस्तक का मूल्य १॥)

ऋषि-दयानंद, भगवान-तिलक

और महात्मा गांधी

के

अमर-सिद्धांत

ऋषि-दयानंद

महाभारत के युद्ध समाप्त होने पर भारत का विशाल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इसके बाद अनेकों शक्तिशाली राजवंश ने राज्य किया, किन्तु वे भी निरंकुशता और स्वार्थी शक्तियों को अपनाकर मर-मिट गये। १६ वीं और २० वीं सदी में दो महापुरुषों ने जन्म लिया। बुद्ध और ऋषि दयानन्द ! बुद्ध सत्य और अहिंसा के नींव पर साम्राज्यवाद की स्थापना चाहते थे। उन्होंने इसमें अपूर्व सफलता प्राप्त भी की। समस्त भारत, जापान, चीन, श्याम और मलाया द्वीपों में इनके सिद्धांत फैल गए, लेकिन जिस महान् राजनीति की वे शुद्धि करना चाहते थे, वह न कर सके। उनकी योजनाओं, सिद्धांतों और धार्मिक तत्त्वों को राजनीति में स्थान नहीं मिल सका। सामाजिक

जगत में बुद्ध की महान्-धार्मिक क्रांति इतिहास की अपूर्व घटना है।

मौर्य्य-वंशी अनेकों राजा, जिसमें महाराज अशोक और चन्द्रगुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं, बौद्ध धर्म के अनुयायी हो गए। अशोक ने बौद्ध धर्म को राजनैतिक-सिद्धांतों पर फैलाया। बौद्ध धर्म ही उनकी प्रबल राजनीति थी। चीन और जापान तक में बौद्ध प्रचारक पहुँच गए और ये देश भी बौद्ध-मत के अनुयायी बन गए। बुद्ध की स्कीम थी कि एशिया-खंड, एक धार्मिक-सूत्र में बँध जावे और समस्त एशिया में एक महान् राज्य की स्थापना हो। इसी स्कीम की सफलता के के लिये नालन्दा में एक महान् विश्व-विद्यालय की स्थापना हुई, जिसमें १५ हजार विद्यार्थियों को शिक्षा देने का प्रबंध किया गया था। इस विद्यालय में चीन और जापान तक के विद्यार्थी पढ़ने के लिये आने लगे। इस अहिंसात्मक योजना में सभी सिद्धांत थे। लेकिन क्षात्र-धर्म की कमी थी। एक क्षात्र-धर्म न होने से बौद्ध-धर्म अपनी आशातीत उन्नति को प्राप्त नहीं कर सका। बौद्ध राजाओं ने नवीन धर्म ग्रहण करके भी कुटिल व्यवहारों को नहीं छोड़ा। इन राजाओं के समय में, अमानुषिक अत्याचार इतने बढ़ चुके थे, कि जनता त्राहि-त्राहि करने लगी थी। व्यभिचार, छल और पाखंड ने राजनीति पर अधिकार जमा लिये थे, परिणाम यह हुआ कि उत्तर-दक्षिण-पूर्व और पश्चिम में फैले हुए इस उत्कृष्ट धर्म का ह्रास होने लगा।

इसके बाद वेदों की फिलासफी लेकर महर्षि दयानंद इस भारत-भूमि पर अवतीर्ण हुए। ऋषि दयानन्द ने वैदिक सिद्धांतों को अपनाकर प्रजातंत्र प्रणाली की सफलता के लिये अपूर्व प्रयत्न किये। उन्होंने

अपनी प्रजातंत्रीय प्रणाली की नींव, एक-ईश्वरवाद और क्षात्र-धर्म पर ही स्थिर रक्खी। महाभारत के बाद भारत का जो पतन हुआ था और ५ हजार वर्षों में छल-कपट-दम्भ और अंधविश्वासों ने जो जड़ भारत में जमा ली थी, उसे उखाड़ फेंकने के लिये वेद ही ऐसे अस्त्र-शस्त्र थे, जिनको लेकर दयानंद ने अपने कार्य-क्षेत्र में पदार्पण किया।

पूर्ण प्रजातंत्रीय शासन-प्रणाली के लिये यह आवश्यक था कि भारत में अंध-विश्वासों पर फैली हुई सैकड़ों जातियों को नष्ट कर दिया जावे और भारत में सिर्फ एक ही जाति का और एक ही रंग का झंडा फहराया जावे। जब तक समस्त जातियों का एकीकरण न होगा, आपस के राग द्वेष और मतभेद नष्ट न होंगे, कौम कभी आजाद नहीं हो सकती। इस वैदिक-फिलासफर की आंतरिक इच्छाएँ यही थीं। ऋषि दयानंद की वह स्कीम थी, जो आज जर्मनी के हिटलर और भारत के महात्मा गांधी की है। हिटलर ने अपने देश की संस्कृति की रक्षा के लिये यहूदियों को निकाल बाहर कर दिया। उसने कहा—जो जाति हमारे देश की संस्कृति और आचार-विचारों को नहीं मानती, वह जाति कभी भी अपने देश का भला नहीं कर सक्ती। हिटलर ने जिस राजनीति को अपने देश में स्थान दिया है, उसका प्रतिपादन और संपादन ऋषि दयानन्द ने ही किया था। हो सकता है, हिटलर ने अपने सिद्धांत, आर्यधर्म के सिद्धान्तों को लेकर ही किया हो। हिटलर ने अपनी संस्कृति को भी आर्य संस्कृति ही घोषित की है। ऋषि दयानन्द के धार्मिक-सिद्धांतों की तो मैं व्याख्या नहीं करता, किन्तु उनके धार्मिक तत्वों में जो राजनैतिक गहनता छिपी हुई थी उससे

हरएक राजनीतिज्ञ को यह मानना ही पड़ेगा कि दयानन्द की वैदिक फिलासफी एक प्रजातंत्र-प्रणाली का प्रचार-मात्र ही था।

उनके मिशन के उद्देश थे:—

१—देश में एक जाति, एक भाषा और सभी एक ईश्वर के मानने वाले हों।

२—संसार के सभी मनुष्य, एक ईश्वर की सन्तान हैं, इससे कोई जाति अछूत नहीं है।

३—ईश्वर को मानने का अधिकार सभी को है।

४—मनुष्यों में ऊँच नीच के भेद-भावों को स्थान देना ईश्वर के साथ विश्वासघात करना है।

५—स्त्रियों को वही अधिकार प्राप्त हैं, जो मनुष्यों को प्राप्त हैं।

६—प्रत्येक मनुष्य को अपनी संस्कृति की रक्षा के लिये क्षात्रधर्म की शरण में जाना अनिवार्य है।

७—देश के बालकों को अपूर्व ब्रह्मचर्य-शक्ति बढ़ाकर देश का सिपाही बनना चाहिए।

दयानन्द के उपरोक्त आर्य-नियमों पर श्री अरविंद घोष ने एक अंग्रेजी के आर्य-पत्र में लेख लिखा था, जिसका सारांश हिन्दी में इस प्रकार है:—

"आर्य" शब्द के अन्दर संयमपूर्ण उत्तम-जीवन, स्पष्टवादिता, विनय, श्रेष्ठता, सरलता, साहस, नम्रता, पवित्रता, सहानुभूति, दया और निर्बलों की रक्षा, उदारता, सामाजिक, धर्म-पालन के लिये उत्सुकता, विद्वानों के लिये सम्मान् इत्यादि गुणों का समावेश है। मानवीय

भाषा में ऐसा और कोई शब्द ही नहीं, जो इतने सुन्दर अर्थ का सूचक हो। आर्य वह है, जो मानवीय उन्नति के लिये आन्तरिक और वाह्य विघ्नों को दूर करता है। जो संयमी है, जो अज्ञान में रहना पसंद नहीं करता और जो रीति-रिवाजों का दास बनकर नहीं रहता, उसकी इच्छा-शक्ति बलवान् होती है। वह सर्वत्र सत्य, यथार्थता और स्वतंत्रता की खोज और प्राप्ति में तत्पर रहता है। आर्य एक कार्यकर्त्ता योद्धा होता है। वह अपने अन्दर और संसार में ईश्वरीय राज्य की स्थापना करके बुराइयों से युद्ध करता है।"

दयानन्द की इस सुन्दर स्कीम का कितना सात्विक अर्थ था। राष्ट्र-निर्माण, संस्कृति की रक्षा और स्वतंत्रता के लिये इन्होंने जो पौधा तैयार किया था, वह अब भी फलफूल रहा है। आज संसार की राजनीति और धार्मिक सिद्धांतों में दयानन्द के सिद्धान्तों का पूर्ण समावेश है। अपने युग के स्वामी दयानन्द सर्वश्रेष्ठ महापुरुष थे।"

श्री प्रिंसपिल ए० टी० गिडवानी आर्य मित्र के ऋष्यंक में लिखते हैं—"आधुनिक भारत के निर्माताओं में, ऋषि दयानन्द का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। आत्मविश्वास की अटलता, उनका मुख्य सिद्धांत था। सूर्य की प्रखर रश्मियों की समुज्ज्वल ज्योति से जगमगाकर उन्होंने न तो घर की परवाह की और न सुख की चिन्ता। सत्य की खोज में स्वामी जी ने बड़े कष्ट सहे तथा हिन्दू जाति को पुनर्जीवित करने के लिये इन्होंने जो शुभ प्रयत्न किया, उसका प्रत्यक्ष फल हम आज अपनी आँखों से देख रहे हैं। ऋषि दयानन्द क्रांतिकारी थे। वे भारत को फिर से वैदिक सभ्यता की ओर लाने के

लिये प्रबल प्रयत्नशील रहे। कभी-कभी क्रांति को इसप्रकार का स्वरूप भी धारण करना पड़ता है। भूतकाल की ओर हटने का बहुधा अर्थ यह होता है कि लोग भविष्य में उन्नति की ओर आगे पग बढ़ावें। भारत को इस समय जिन बातों की सबसे अधिक आवश्यकता है, इसमें "हिन्दू-संगठन" सबसे जरूरी है। अनैक्य बढ़ता जा रहा है। मत-मतान्तर के भेदभाव ने आजकल हमारी आंतरिक आँखें खोल रक्खी हैं और हम समझने लगे हैं कि जातियों, उपजातियों की हानिकारक सृष्टि ही हमारी निर्बलता का मुख्य हेतु है। अब हम पारस्परिक एकता स्थापन करने के शुभ प्रयत्न को बड़ी आशापूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं। परमात्मा करे हमारी यह एकता-मूलक दृष्टि व्यापकरूप धारण करे, वह संयुक्त और स्वतंत्र भारत की दृष्टि हो। मतवाद और साम्प्रदायिकता के आधार पर एकता स्थापन करने से भविष्य समुज्ज्वल नहीं हो सकता। इस प्रकार की गतिविधि हमारे विनाश का कारण है। आओ परस्पर मिलें और जिन लोगों को हमने उद्दण्डता और अज्ञानवश अपने से अलग कर रक्खा है, उन्हें भी स्वतंत्रता प्राप्ति की लड़ाई लड़ने के लिये अपने समाज और धर्म में समुचित स्थान दें।

साधवाचार्य्य श्री टी० एल० वास्वानी लिखते हैं—"कि ऋषि दयानन्द की जागृति का समय शिवरात्रि थी। बाल्यावस्था में आधी रात के समय जब स्वामी जी ने शिवजी की मूर्ति पर एक चूहे को उछलते कूदते तथा चावल खाते देखा, तो सहसा उनके मन में यह प्रश्न उठा, कि क्या यह प्रतिमा विश्व की वास्तविक स्वामिनी हो सकी है? इस घटना के कुछ काल पश्चात् दयानन्द ज्ञान की खोज में बाहर निकले।

चिरकालीन अन्वेषण और आत्मसंयम के पश्चात् उन्हें वेदों से सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हुई। स्वामीजी को वेदों की वास्तविकता, प्राचीन पंडितों की व्याख्याओं से विदित नहीं हुई, प्रत्युत उन्हें उसका ज्ञान मथुरा में रहने वाले विरजानन्द नामक एक प्रज्ञाचक्षु साधु द्वारा हुआ। यदि विरजानन्द न होते तो संसार योगी दयानन्द से वंचित रह जाता। उन्होंने गुरु विरजानन्द के चरणों में बैठकर इस बात को सीखा कि पाश्चात्य-समालोचकों के मतानुसार वेदों में बहु देववाद नहीं पाया जाता और न उनमें मैक्समूलर के कल्पित संदेहवाद और कट्टर पौराणिकों की मूर्ति-पूजा को ही स्थान दिया गया है। साधु विरजानन्द से ऋषि दयानन्द को सब मनुष्यों, सब जातियों और सब राष्ट्रों को एक ब्रह्म की उपासना का उपदेश मिला। इसी ज्ञान की घोषणा स्वामीजी ने अपने अनुयायियों को की। उन्होंने विविध धर्मों के स्त्री-पुरुषों को वेद पढ़ने के लिये कहा। इसी ज्ञान को प्राप्त करने के लिये ऋषि दयानन्द ने उन स्त्रियों को उपदेश दिया, जो शताब्दियों से पुरोहितों के जटिल जाल में जकड़ी हुई अन्धकार में पड़ी हुई थीं। दयानन्द ने संसार के अनेक महापुरुषों की भाँति सत्य के लिये घोर कष्ट सहे। उन्हें कई बार धोखे से विष दिया गया। इस तरह सन् १८८३ ई० में स्वामीजी की मानव-लीला संवरण हुई। यही नहीं बल्कि अनेक बार उन्हें अपना व्याख्यान देते समय, स्वदेशवासियों द्वारा की गई पाषाण-वर्षा का भी लक्ष्य बनना पड़ा था। अब विविध सम्प्रदायों के लोग स्वामीजी को प्रतिष्ठा-पूर्वक स्मरण करते हुए उन्हें अपनी जाति का त्राता समझते हैं।—

श्री० सी० एफ़० एण्डरूज़ ईसाई होते हुए भी दयानन्द के संबंध में अत्युत्तम धारणा रखते हैं। डा० गौड़ वैदिक आदर्शवाद के विश्वासी न होकर भी दयानन्द की महत्ता और विद्वत्ता स्वीकार करते हैं। यही कारण था, कि भारतवर्ष के कोने-कोने और सुदूरवर्त्ती फ़िजी तथा आफ्रिका तक के बहुत से लोग दयानन्द जन्म-शताब्दि में सम्मिलित हुए थे। कुछ लोग पैदल चलकर बंगाल से प्राचीन तीर्थ-स्थान मथुरा पहुँचे थे। एक महाशय जापान से भी आये थे। कालेज के हज़ारों विद्यार्थी स्पेशल ट्रेनों द्वारा मथुरा पहुँचे थे। ब्रह्मचारी वृन्द-अनाथ मण्डली और दलित-दल ने ऋषि कीर्तन कर मथुरा नगरी को गुञ्जरित कर दिया था। देवियाँ भी ऋषि दयानन्द की महिमा में सुमधुर गीत गायन करती हुईं एक अपूर्व दिव्य दृश्य उपस्थित कर रहीं थीं। दो लाख नर-नारियों के एक बहुत बड़े जुलूस द्वारा दयानन्द के जयघोष से आकाश गूँज रहा था। इस बड़े अद्भुत जन-समूह को देखकर मुझे वीर नैपोलियन की सेना का स्मरण होने लगा। क्या ऋषि दयानन्द की महत्ता वीर नैपोलियन से बढ़कर न थी? आर्यसमाज द्वारा शिक्षा-प्रचार और समाज संशोधन का जो कार्य हुआ है, वह आश्चर्य-जनक है। आज भारतवर्ष ऋषि दयानन्द का नाम लेकर बहुत प्रसन्न होता है और उन्हें हिन्दू-धर्म का रक्षक, मुक्तिदाता तथा जाति में जीवन संचार करने वाला समझता है।

स्वाधीनता का पुजारी

वास्तव में ऋषि दयानन्द स्वाधीनता के पुजारी थे। उनका लक्ष्य था, कि उन अनुचित बन्धनों को काट फेंके जिनसे कई सदियों से

भारतीयों ने अपने हाथ पैर बाँध रखे हैं। न तो वे हिल सकते हैं और न वे अपने हाथ पैर फड़फड़ा सक्ते हैं। रूसो का कथन है कि मनुष्य स्वाधीन पैदा हुआ है, परन्तु वह अपने को हर जगह जकड़ा हुआ पाता है। कहीं वह राजनैतिक बन्धनों से परेशान है तो कहीं वह समाज के नियमों में बँधा है। परमात्मा मनुष्य को सिर्फ कुदरती कानूनों को मानने का आदेश देता है। भारतीय-शास्त्र भी प्रकृति के अनुसार चलने का उपदेश मनुष्य को देते हैं।

ऋषि दयानन्द ने देखा, कि मनुष्य सैकड़ों तरह की जंजीरों से जकड़ा हुआ है। उनका दिमाग़ पुराण-कुरान और अंजीलों में सीमित है, सिवाय इसके वे और कुछ सोच-समझ नहीं सक्ते। मनुष्य की उन्नति में बाधा देने वाले अनेकों ऐसे कार्य हैं, जिसे लोग धर्म कहते हैं। ऊँच और नीच का भेदभाव, धनिक और गरीबों की श्रेणियाँ, काले और गोरे के रंग-भेद ने, भारत को परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ दिया है। जब तक इनमें ये पराधीनता-युक्त रूढ़ियाँ रहेंगी, वे अपने वास्तविक जीवन को सच्चा, स्वतन्त्र और सुन्दर नहीं बना सक्ते। ऋषि का जीवन स्वतन्त्रता का सुन्दर पाठ है। उसका एकमात्र उद्देश्य था—राष्ट्र की स्वतन्त्रता, समाज की स्वतन्त्रता और कौम की आज़ादी। ऋषि का मिशन आज भी काम कर रहा है। यदि आज भारत की स्वाधीनता रुकी हुई है तो वह उन्हीं बन्धनों के कारण। ऋषि, कौम के मौलवी-मुल्ला-पादरी और पुरोहितों के अन्धविश्वासरूपी-जाल से बिलकुल मुक्त कर देना चाहते थे। ऋषि ने जिन बातों को अपनी पुस्तकों में लिखी हैं वे राष्ट्र को स्वाधीनता प्रदान करने वाली

अलौकिक बातें हैं।

सन् २० के पहिले महात्मा गांधी को इसका अनुभव हो चुका था और राष्ट्रीय संग्राम के लिये भारत की, ७ करोड़ अछूत जातियों को मानवता की समानता दे देना स्वीकार करना पड़ा था। महर्षि दयानन्द इस कार्य को अपने दिमाग में सबसे पहिले स्थान दे चुके थे। उन्हें इस बात का पता था कि राष्ट्र के लिये ऊँच नीच, छूत-अछूत का भेदभाव एक जहरीला कीड़ा है, जो राष्ट्रीयता को कभी पनपने न देगा। आज ऋषि दयानन्द का प्रोग्राम संसार के सभी महान् पुरुष पूरा करने में लगे हैं।

भगवान्-तिलक और महात्मा गांधी

ऋषि दयानन्द के बाद हम दो महापुरुषों को सामने देखते हैं। पहला महापुरुष लोकमान्य तिलक अपने कार्य की अवधि पूरी कर संसार से चल बसे, और अपने सिद्धान्तों की छत्रछाया में ३० करोड़ के जन-समूह को छोड़ गए। बालगंगाधर तिलक वह सर्वप्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने भारत की राष्ट्रीयता को जन्म दिया। स्वतन्त्रता देवी के आह्वान पर उन्होंने इतने अमर सिद्धान्तों की रचना की, कि वे आज भी संसार के कोने-कोने में व्याप्त हैं। अपने छः वर्ष के मांडले के कारावास में गीता की अमर-रचना कर डाली, जो आज भारत में ही नहीं वरन् संसार के विद्वानों के हाथों में सजीव मूर्ति के रूप में दिखाई दे रही है।—

स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

इस महामन्त्र के ऋषि, लोकमान्य ही थे। स्वतन्त्रता के मन्दिर में बैठकर इस महामन्त्र का प्रकाश उन्होंने भारत में फैलाया। बन्देमातरम् की ध्वनि को चतुर्दिक गुञ्जरित करने वाले आप भारत के सर्वप्रथम पुरुष थे। तिलक पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे। उन्होंने अपना समस्त जीवन देश के प्रति समर्पण किया था। जिस समय देश में पराधीनता का साम्राज्य था, विदेशी महाप्रभुओं की कुटिल नीति का समस्त भारत में प्रचार हो रहा था, साम्राज्यवाद के नाम पर हमारी आत्माएँ गुलामी की जंजीरों में कसी जा रही थीं, "आज़ादी"—या "इन्कलाब" का कहना भीषण राजद्रोह समझा जाता था, ऐसे ही कठिन समय में भारतमाता की गोद में बाल गंगाधर तिलक अवतीर्ण हुए। तिलक की साहसपूर्ण वक्तृता और उनके कार्यक्रम से अंग्रेज़ सरकार दहल उठी। भयंकरता के जमाने में, अपनी उँगलियों पर अंग्रेज़ों को नचाने वाले एक तिलक ही थे। अन्त में सरकार की पराजय हुई और तिलक के सिद्धान्तों के आगे उन्हें नत-मस्तक होना पड़ा। लोकमान्य तिलक एक अमर लेखक थे, उनकी रचनाओं में एक विलक्षण शक्ति थी, जो हठात् मनुष्य को अपनी ओर खींच लेती थी। "होमरूल" के सिद्धान्तों के प्रतिपादन में वे ऐसी मधुर भाषा का प्रयोग करते थे, कि उनके भाषणों पर जनता मुग्ध हो उठती थी। थोड़े ही समय में भारत के सभी स्थानों में स्वराज्य-सभाएँ कायम हो गईं।—विश्व के सभी लेखकों और राजनीतिज्ञों ने लोकमान्य तिलक के अमर सिद्धान्तों को बीसवीं-सदी का एक अमर सिद्धान्त माना है। अपने कार्यक्रम-को

अधूरा छोड़, उसकी पूर्ति का भार महात्मा गांधी के हाथों में सौंपकर, आप इस असार संसार से चल बसे।

तिलकवाद को भारत ने अच्छा स्थान दिया। दक्षिण महाराष्ट्र, मध्य हिन्दुस्तान तथा बंगाल प्रांत लोकमान्य का शिष्य हो गया। भारत ने तिलक की पूजा की और उन्हें भगवान की महान् उपाधि से विभूषित किया।

दूसरा महान् व्यक्ति जिन्हें हम महात्मा-गांधी कहते हैं, उसी कार्यक्रम को पूरा करने में व्यस्त हैं, जिसे तिलक ने प्रारम्भ किया था। महात्मा गांधी ने जिस अमर राज्य-क्रांति की रचना की है, उसकी स्वीकृति लोकमान्य तिलक ने अपनी मृत्यु शैय्या पर दी थी और वह था अहिंसात्मक असहयोग ? महात्माजी के इस सिद्धान्त के प्रति, जो सत्य और अहिंसा के तत्व पर खड़ा किया गया था, संसार ने प्रेम और सहानुभूति की वर्षा की। महात्माजी ने इस सिद्धान्त से अपूर्व विजय प्राप्त की। उनकी इस अपूर्व विजय पर संसार ने महात्माजी को बीसवीं सदी का "ईसा" कहकर उनका आदर किया।

महात्माजी मनुष्यत्व, समानता और स्वाधिकार की एक जीती-जागती मूर्ति हैं। मनुष्य मात्र में समानता और संगठन का प्रचार कर विश्व के सन्मुख शांति की जो अपूर्व योजना रख दी है, उसके विषय में एक अमेरिकन पत्रकार मि० इ० एच० जेम्स ने जो असहयोग के दिनों में बारडोली का अपूर्व संग्राम देख रहे थे—अपने विचार प्रकट किये हैं। वे इस प्रकार हैं:—

"भारत में महात्मा गांधी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो भारत को पुनः संगठित कर संसार में नवीन राजनीति की स्थापना कर सकते हैं। वे ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो इस नयी राजनीति की स्थापना कर रहे हैं। इसी प्रकार वे केवल भारत का ही नहीं किन्तु विदेशों का भी दृष्टिकोण बदल रहे हैं। वे एक प्रचण्ड सामाजिक और राजनीतिक सुधारक हैं। उन्होंने नवीन राजनीति का प्रचार कर एक नवीन युग को जन्म दिया है। उन्होंने भारत को अहिंसा और सत्याग्रह नाम के दो अस्त्र प्रदान किये हैं, और वे ही ब्रिटिश-साम्राज्य पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

वे वर्तमान युग के ईसा हैं

इस आंदोलन से संसार की विचारधारा में, विशेषतः युद्ध और घातक अस्त्रों के संबंध में विशेष परिवर्तन हो जायगा। वे नीति और चरित्र की नवीन व्याख्या कर रहे हैं, नए इंजील-धर्म का प्रचार कर रहे हैं। भारत की स्वतंत्रता का प्रारम्भ सादगी से होता है। भारत के सामने राष्ट्रीय संगठन की सबसे बड़ी समस्या उपस्थित है। भारत में अधिक जातियाँ होने से उन्नति के सभी मार्ग रुके हैं। अमेरिका में हमें इस प्रकार की कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। अगर आप भारत की जातियों के संगठित करने में सफल हो गए तो ब्रिटिश सरकार को झख मारकर नत-मस्तक होना पड़ेगा। जातीय और धार्मिक भेद-भाव नष्ट होने पर केवल स्वतंत्रता की ही पुकार रहेगी।"

मि० वेल्सफोर्ड ने भी यही विचार प्रकट करते हुए महात्मा जी को

अपनी श्रद्धांजलि समर्पित की थी। इतना ही नहीं महात्मा जी के सिद्धांतों और उनके आंदोलन के साथ संसार की भी सहानुभूति थी। इस नग्न फकीर की ओर आज भी संसार आश्चर्यमिश्रित दृष्टि से देख रहा है। ब्रिटिश-राजनीतिज्ञ इसे राजनीतिक जादूगर कहते हैं। भारतीय समस्याओं में सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयाँ बड़ी जबर-दस्त हैं। निरंकुश शासन की छत्रछाया में एक ओर जहाँ घोर दमन चल रहा था, वहाँ दूसरी तरफ देश दरिद्रता, अज्ञानता और उदासीनता के घोर अंधकार में डूबा जा रहा था। शासन-चक्रों के आघात प्रत्याघात से भारत पददलित हो रहा था। जब कि धन और शक्ति विदेशियों द्वारा लूटी जा चुकी थी, समुद्री डाकू अनेकों तरह से हमें लूटने की नवीन-योजनाएँ बनाकर हमें लूट रहे थे, उसी समय दीन-हीन और अशक्त देश में महात्मा जी ने नवजीवन का संचार किया। उनकी वाणी में संघर्ष और भीषण क्रांति की चिनगारियाँ छिपी थीं! चिनगारियों के प्रकट होते ही भारत के कोने-कोने में भीषण कोलाहल मच गया। सन् २१, २६, ३० और ३१ में जब महात्मा-जी देश के सेनापति बने, उस समय उनकी एक ही आवाज पर, माताएँ नन्हें-नन्हें बच्चों को गोद में लेकर राष्ट्रीय संग्राम में कूद पड़ीं। बच्चों ने बाल-सैनिक दल तैयार किए और राष्ट्रीय झंडे लेकर महात्मा जी का साथ दिया। पिता बच्चों को, पत्नी पति को और नवयुवक अपना सर्वस्व छोड़कर संग्राम में कूद पड़े। बम्बई, गुजरात, बंगाल और मध्यप्रांत के जेलखाने ठसाठस भर गये। लोग हँसी करते थे, जब कि महात्मा जी सत्याग्रह-आश्रम से डण्डी की ओर मुट्ठी भर स्वयंसेवकों की फौज लेकर रवाना हुए थे।

लेकिन इनके रवाना होते ही भारत के चारों कोनों में भीषण राज्यक्रांति उठ खड़ी हुई।

इस आंदोलन से महात्मा जी ने मायावाद पर आदर्शवाद की पताका खड़ी कर दी। निरन्तर महलों में सुखों की शय्या पर सोने वाले चौंक उठे। यह उज्ज्वल आदर्श का निर्माण संसार की नवीन विभूति है। यदि महात्मा जी बहुत काल तक अमर रहे, तो कहना नहीं होगा कि संसार में भारत अपना वही आदर्श उपस्थित करेगा, जो आज से पाँच हजार पूर्व था।

महात्मा जी का वर्तमान कार्यक्रम उस हठवाद से लोहा लेना है, जो आजकल उन्नति के मार्गों में बाधा उपस्थित कर रहा है। महात्मा जी सरल चित्त से आगे बढ़ रहे हैं, और उनकी विजय अवश्य होगी।

"सत्यं शिवं सुन्दरम्"

"जहाँ सत्य है वहीं विजय है।"

यही महात्मा गांधी का मूलमंत्र है।

महात्मा जी का आदर्शवाद

महात्मा जी का आदर्श और उनके सिद्धांतों को समझना कोई साधारण बात नहीं, पर जहाँ तक उनके सिद्धांत समझे जा सके हैं, उन्हीं सिद्धांतों का तत्वमात्र ही लिखने का यह साधारण प्रयत्न है। महात्मा जी यह कई बार स्वीकार कर चुके हैं कि उनकी फिलासफी कोई चीज नहीं है। उनके सिद्धांत जन-साधारण की जिम्मेदारी और संसारी अड़चनों को सुलझाने के लिये महान् त्याग और प्रयत्न करने के

लिये मानव-समाज को उत्तेजित करना ही है। भारत के सामाजिक जीवन में उत्साह, स्फूर्ति और नवीनता का प्रयत्न उनके उद्देशों का महान् आशय है। फिलासफी और उसके आंतरिक तत्व तथा व्यावहारिक सिद्धांत वही हैं, जो प्रायः सभी धर्मों के महान् पुरुषों ने बतायी हैं। संसार के सभी महान् पुरुषों ने समानता, अहिंसा और जीवन की सफलता के लिये परिश्रम की बड़ी-बड़ी व्याख्याएँ की हैं। महात्मा जी अपने हरिजन पत्र में लिखते हैं—"कि शांति-सेना के प्रत्येक सदस्य को चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, अहिंसा में जीवित विश्वास रखना चाहिए। यह तभी संभव है, जब कि ईश्वर में उसका जीवित विश्वास हो।"

महात्माजी के विशाल हृदय से जितनी भी विचार-धाराएँ निकलीं हैं, वे समस्त संसार में आदर्शरूप में स्वीकार की गईं। सत्य और अहिंसा को ही महात्माजी ने ईश्वर का रूप माना है। इन दोनों से ही वे भारत का ही नहीं वरन् संसार का उद्धार करना चाहते हैं। प्राचीन ऋषियों ने जिन महान् तत्वों में ईश्वर को पाया था, वे सत्य और अहिंसा ही थे। जगत् का मूल ही "सत्" है, इसे कृष्ण ने भी गीता में कहा है। कुरान का मतलब भी यही है कि ईमान ही संसार का खुदा है। बाइबिल ने सच्चाई और विश्वास को ही ईश्वर का रूप दिया है। उसको ढूँढ़ने के लिये हमारे यहाँ के प्राचीन ऋषियों ने दृष्टि की शुद्धता बतलायी है, उसी तरह महात्माजी ने भी 'सत्' की खोज के लिये शुद्ध हृदय का होना आवश्यक बतलाया है। महात्मा जी का यह सर्वोत्तम सिद्धांत है कि भलाई और बुराई का निर्णय शुद्ध हृदयवाला

मनुष्य ही कर सकता है। कोई जज इसका निर्णय नहीं कर सकेगा। हृदय की पवित्रता ही मनुष्य को सत् की ओर खींच ले जावेगी। मनुष्य की भावनाओं और विचारों में एक क्रांति की लहर पैदा होती है, और मनुष्य जीवन के साथ ही युग परिवर्तन हो जाता है। महात्मा जी के विधानों में अहिंसा, अस्पृश्यता-निवारण और अपरिग्रह ही ऐसे मुख्य हेतु हैं, जिनसे वे नवीन युग का संदेश दे रहे हैं।

यही मानव-जीवन की सर्वोत्तम सफलता, ईश्वर प्राप्ति का सुगम मार्ग और सामाजिक तथा राजनैतिक दलदलों को एक करने के सुगम मार्ग हैं। ऋषि-दयानंद, स्वामी रामतीर्थ, विवेकानंद और पश्चिमी विद्वानों में कार्ल मार्क्स तथा मैक्समूलर आदि ने उपरोक्त तीनों तत्वों के बल पर संसार में महान् से महान् सफलताएँ प्राप्त कीं। महात्मा जी की अकाट्य-फिलासफी को कोई नहीं काट सकता। उनकी वह फिलासफी, शिशु-जीवन से लेकर मानव-जीवन तक, और सामाजिक जीवन से लेकर राजनैतिक जीवन तक विशेष महत्व रखती है।

महात्मा जी की फिलासफी में कहा गया है, कि सब धर्म बराबरी के हैं, याने सभी मानव-संसार को "सत" की छत्रछाया में रहने का उपदेश देते हैं। यदि सभी धर्मावलम्बी समानता के सिद्धांत को समझने लग जावें, तो कोई भी राष्ट्र कभी भी किसी का गुलाम नहीं रह सकता। पाश्चात्य देशों में जहाँ समानता के अधिकारों में मतभेद नहीं है, वे आज उन्नति की ओर अग्रसर होते चले जा रहे हैं। आज हम मुहम्मद और ईसा के सिद्धांतों की गहराई में जाते हैं, तो दोनों में कुछ भी मतभेद नहीं है। मुहम्मद साहब संसार में "ईमान" की सत्ता

स्थापित करना चाहते थे, ईसा प्रेम के विशाल साम्राज्य के स्थापन में जीवनाहुति देने से तिलमात्र नहीं हिचके। दोनों महापुरुषों के सिद्धांत का एक ही आशय है। इसी तरह सभी महापुरुषों के अटल सिद्धान्त और सद्गुण अपनी ओर आकर्षित करते हैं। सभी एक ही माता-पिता के संतान हैं। भगवान कृष्ण ने आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व इसी आदर्शवाद को संसार के सन्मुख उपस्थित किया था। मनुष्य के सिद्धांतों में देश और काल के भेदों की उपयोगिता होती है, परन्तु वास्तविक जीवन की सार्थकता इनसे सिद्ध नहीं होती। प्राकृतिक और ईश्वरीय नियमों की गहराई कुछ और है, और इस विषय में प्रायः सभी औलिया और पैगम्बरों की राय एक है। सब धर्मों के आचार्यों ने धार्मिक तत्वों के अनेकों विधान अपने-अपने युग में लिखे हैं। महात्मा जी ने इन सब धर्मों के तत्वों का निचोड़ लेकर ही, हठवाद, वर्तमान मायावाद तथा वैज्ञानिक-लौहवाद को नष्ट करने के लिये अपना पैर आगे बढ़ाया। वे अपने जीवन में जिस सफलता को प्राप्त करना चाहते हैं, उसके लिये संसार के चारों कोनों से निरन्तर संदेश आते हैं। संसार का ऐसा कोई भी राष्ट्र नहीं है, जहाँ महात्मा जी के सिद्धांत न माने जाते हों। आयरलैण्ड के डीवेलेरा, लेनिन और कमालपाशा ने महात्मा जी के प्रत्येक वचनों की पूजा की। अमानुल्ला खाँ को महात्मा जी में अपूर्व विश्वास था। रूस का प्रसिद्ध राजनैतिक नेता ट्राटस्की महात्मा जी के सिद्धांतों को उच्चतम आदर्श का रूप देता है।

वर्तमान् शिक्षा-क्रम से महात्मा जी का उद्देश सिद्ध नहीं होता। वे इसे गुलामी के बंधन में बांधने वाली तालीम समझते हैं।

इसीलिये उन्होंने शीघ्र ही वर्धा-योजना के द्वारा भारतीय बच्चों को स्वावलम्बी शिक्षा देने का आयोजन किया है। इस तरह महात्मा जी के समस्त कार्यक्रम में आध्यात्मवाद का अतीत रहस्य भरा पड़ा है। उनकी इस नवीन शिक्षा-योजना से धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी क्षेत्रों में भारतीय बालक प्रवीण होकर निकलेंगे।

मानव-जीवन और मानव-आदर्श, जबतक किसी राष्ट्र को प्राप्त नहीं होता, तबतक वह राष्ट्र, गुलाम रहता है। विजयी जातियों ने अपने विजित देशों को सदा से ही ऐसी शिचा से दूर रक्खा है और केवल इसीलिये कि वे अपने जीवन के सुखों के लिये पराजित जातियों का खून चूसते रहे। स्वावलम्बी-शिक्षा के प्रचार को राजद्रोह की ओट में बंद कर दिया जाता है। संसार के सभी स्वावलम्बी राष्ट्र अपने देश के गरीबों को भर पेट भोजन देते हैं। अमेरिका का एक मजदूर ७ से लेकर १० रूपया तक प्राप्त कर लेता है परन्तु भारत का एक मजदूर जो कला के कार्य में अत्यंत निपुण है, २)-रुपया रोज और इससे भी कम प्राप्त करता है।

महात्मा जी ने सदा से ही यह अनुभव अपने सम्मुख रक्खा। जीवन के एक-एक क्षण को उन्होंने भारत को स्वावलम्बी बनाने के लिये व्यतीत किया। वर्धा-योजना, एक ऐसे जीवन और नूतन युग की शिक्षा है, जिससे राष्ट्र के १० करोड़ भूखे किसानों और मजदूरों को भोजन और उनके बच्चों की व्यवस्था हो सकती है!

स्वामी दयानन्द, महात्मा तिलक और गांधी ने पक्षपातरहित होकर धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, वरन् एक अन्वेषक की दृष्टि से यह

सिद्ध कर दिया है कि जिस भारतीय सभ्यता को पश्चिमी विद्वान अप्रमाणिक, असत्य और कल्पित बताकर उसकी हत्या कर डालना चाहते थे, वह वास्तव में संसार की अत्यन्त खोई हुई प्राचीन सभ्यता है। बाबा आदम के पहिले भारतीय दर्शन-शास्त्रियों ने, संसार के कोनों में फैली हुई जातियों में भारतीय-सभ्यता का संदेश सुनाकर उन्हें सभ्य बनाया था। लोकमान्य-तिलक की यह पहली खोज थी, जब कि उन्होंने वैदिक-सभ्यता को अपने पुष्ट प्रमाणों सहित संसार के आगे रक्खा।

मिस्टर ग्लैडस्टोन सरीखे वक्ता, लार्ड मौरले सरीखे प्रसिद्ध दार्शनिक और बालफोर्ड सरीखे अंग्रेजी-साहित्य महारथी भी मौलिक तत्व की खोज से वंचित रहे। भारत के अनेक विद्वानों ने भी इस तरफ ध्यान नहीं दिया। लोकमान्य तिलक की इस खोज से संसार के तत्वदर्शी और दार्शनिक चकित हो गए। लोकमान्य का जीवन एक अद्भुत जीवन था। वेद संसार के सबसे पुराने ग्रंथ हैं और संसार के विद्वान इसे स्वीकार भी करते हैं। यदि मानव-विकास और उज्ज्वल राजनीति का अनुशीलन करना हो तो वेदों से बढ़कर कोई सामग्री नहीं। पाश्चात्य विद्वान इन्हें अब भी कल्पित समझते हैं, उनका मत है कि प्राचीन समय में इतना सभ्य और उज्ज्वल-राजनीति का जानने वाला ही नहीं था। उनका यह भी मत है कि मानव-सृष्टि अभी कुछ काल की रचना है, आज से दस हजार वर्ष पूर्व मानव-जगत था ही नहीं। अगर वे वेदों को मानते हैं, तो सृष्टि का आरंभ, उन्हें वैदिक-फिलासफी से ही मानना पड़ेगा। इसलिये वे वेदों को बहुत प्राचीन नहीं मानते। लोकमान्य तिलक ने अपने महान् परिश्रम से पाश्चात्य विद्वानों को यह

भूल स्वीकार करा दी और उन्होंने वेदों की प्राचीनता को स्वीकार कर लिया। यह एक ऐसी विजय थी, जिसका भारत को महान् गर्व है। लोकमान्य की जीवनी एक विशेष व्यक्ति का जीवन है। उनके जीवन की महत्व-पूर्ण घटनाओं का दिग्दर्शन सहज ही में नहीं हो सकता। उनके सामाजिक जीवन और राजनैतिक जीवन में जरा भी अन्तर नहीं था। वे युगपरिवर्तन के आधुनिक ऋषि थे। उनकी सत्ता ही ने हमारे सार्वजनिक जीवन की वर्तमान अवस्था को जन्म दिया। उनके गीता रहस्य ने दार्शनिक जगत में जो स्थान प्राप्त किया है, उसके विशद्-निरूपण की अत्यन्त आवश्यकता थी। दो हजार वर्षों में गीता के अनेक भाष्य रचे गए और कर्मयोग के अनेकों ग्रंथ प्रकाशित हुए, किन्तु उनका उद्देश सिर्फ यही था कि लोग वृहत् कर्मक्षेत्र से विरक्त हो जायँ। उन्होंने गीता के मूलमंत्र की ओर विशेष ध्यान ही नहीं दिया। गीता का मूलमंत्र ही यही है—

"तस्माद्युध्यस्य-भारत"

गीता सन्यास की समर्थक उतनी नहीं जितना कि उसके कर्मयोग के भाष्य-कर्ताओं ने की है। लोकमान्य तिलक ने कर्मयोग सिद्धांत को स्पष्ट रूपसे जनता के समक्ष रखकर यह समझाया कि कर्म का मार्ग सन्यास मार्ग नहीं, परन्तु एक स्वतन्त्र मार्ग है। यह रहस्य भगवान-तिलक के गीता रहस्य ही ने प्रकट किया। शंकराचार्य ने तिलक की गीता को मान्य देकर उसकी प्रशंसा की है। गीता-रहस्य और शंकरभाष्य में कोई मतभेद नहीं, दोनों के विषय मनुष्य-जीवन के अधिकारयुगों के लिये एक हैं। भगवान शंकराचार्य ने कहा है—जो कर्म मार्ग से फिरे

हुए हैं उन्हें कर्म का ही उपदेश उपयुक्त है, बिना कर्मक्षेत्र को पार किये वह मनुष्य—जीवन की महान् सफलताएँ प्राप्त ही नहीं कर सकता। गीता में स्वयं भगवान् कृष्ण कहते हैं—

आरूरूक्षोर्मुनेर्योगं, कर्म कारण मुच्यते।

योगारूढ़स्य, तस्यैव, शमः कारण मुच्यते॥

यह गीतारहस्य का मूलमंत्र है। इसका सिद्धांत यही है कि गीता के छिपे हुए भेद जिनका अभी तक निरूपण नहीं हुआ है, प्रकाशित किए जावें। यद्यपि भारतीय पण्डितों ने गीता-रहस्य की अनेकों समालोचनाएँ की हैं किन्तु उन सभी में लोकमान्य तिलक अधिक सफल हुए। यूनानियों ने जिस सौर-जगत की रचना के पता लगाने में अनेकों विफल प्रयत्न किये, उनका पता लोकमान्य तिलक ने वेदों की रचनाओं से लगाया और उसे संसार के सभी विद्वानों को मानना पड़ा। अब यह भलीभाँति सिद्ध हो चुका है कि वेदों का रचनाकाल आज से १०००० हजार वर्ष से अधिक है। अभी तक अंग्रेज लोग वेदों का रचनात्मक समय ३००० वर्ष से अधिक नहीं मानते थे। गीता के बाद भगवान तिलक की यह दूसरी विजय थी, जिससे ईसाई जगत् को उनके सिद्धांतों के आगे नत-मस्तक होना पड़ा। यह आर्य-धर्म का महान् अन्वेषक था। जर्मनी के गणिताचार्य और आकाश ज्योतिषाचार्यों ने लोकमान्य के सिद्धांतों को माना। देश के लिये भगवान तिलक के निम्न शब्द आज भी भारतवासियों के हृदय-पटल पर अंकित हैं—

"तुमको स्वराज्य पर विश्वास न हो तो तुम भारत में रहने के अधिकारी नहीं हो। इससे अच्छा है तुम अपने देश को ही छोड़ दो,

विघ्न आवेंगे। मैं यह नहीं कहता कि विघ्न नहीं आवेंगे, पर यदि विघ्न ही न आए वो तुम्हारा पुरुषार्थ ही क्या रहा। यदि कोई शाम सवेरे तुम्हारे गले में अन्न ठूँस दिया करे, तो क्या वह तुम्हें अच्छा लगेगा। रूचि अन्न में नहीं स्वकष्ट में है। स्वकष्ट से मिला हुआ अन्न अधिक मीठा लगता है।

हम तिलक को जिस युग का प्रवर्तक कह आए हैं वह यही युग था। उन्होंने ही हमारे सामने इस युग को लाकर खड़ा कर दिया। आज स्वराज्य शब्द की घोषणा स्वयं सम्राट भी करने लगे। यह उस महापुरुष का ही प्रसाद है। भारतीय राजनैतिक नेताओं में तिलक के बराबर स्थान किसी ने भी प्राप्त नहीं किया। आत्मत्याग और लोक-हित के लिये भगवान् तिलक की आत्मबलि आज संसार में दीप्तमान् है।

समाप्त

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

झाँसी की रानी—

प्रातःस्मरणीया पूजनीया महारानी लक्ष्मीबाई को ऐसा कौन भारतीय है जो न जानता हो । सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध में यह वीराङ्गना किस महान साहस तथा वीरता के साथ गौराङ्ग महाप्रभुओं की विशाल सेना का सामना करती हुई अनेकों बार उनके दाँत खट्टे किए और अन्त में अपनी प्यारी मातृभूमि के लिए लड़ते हुए युद्ध-क्षेत्र में स्वयं जल मरी परन्तु पराधीनता को स्वीकार नहीं किया, इसका वर्णन आपको इस पुस्तक मे अत्यन्त हृदयविदारक तथा रोमांचकारी भाषा में मिलेगा। सचित्र पुस्तक का मूल्य २) रुपया।

वीर मराठा—

वीर मराठा बाजीराव पेशवा का जन्म उस समय हुआ था जिस समय समस्त दक्षिण प्रान्त यवनो के शिकञ्जे में जकड़ा हुआ उद्धार पाने की प्रतीक्षा कर रहा था। ऐसे समय में जब कि यवनों के अत्याचार का बाजार गर्म था और चारों तरफ त्राहि त्राहि मची हुई थी । इस वीर ने समस्त महाराष्ट्र वीरों का संगठन किया कि अपने देश को स्वतन्त्र करने के निमित्त युद्ध की बागडोर अपने हाथों मे ले स्वतन्त्र्य-युद्ध मे कूद पड़ा। समुद्र की भाँति उमड़ती हुई यवन सेना से मुठभेड़ और साथ ही साथ

अंग्रेजों और अन्यान्य विदेशियों से भी इस वीरता के साथ सामना किया है कि पढ़कर एक बार दाँतों तले उँगलियाँ दबा बैठेंगे। यवनों को बार बार शिकस्त देते हुए अन्त में मदन मस्त मस्तानी नामक यवन कन्या को किसतरह हस्तगत किया है आदि २ विवरण पढ़ने ही योग्य हैं। मूल्य १) रुपया।

वीर अमरसिंह राठौर--

यह वही अमरसिंह राठौर हैं, जिन्होंने भरे दरबार में सेनापति सलावत खाँ का सर काटकर भूखे सिंह के समान यवन दल का संहार करते हुए किले की चहारदिवारी के ऊपर से घोड़े सहित कूद कर साफ निकल गए थे। औरों की क्या स्वयं बादशाह भी इनके डर से काँपा करता था। यह पुस्तक उन्हीं वीर शिरोमणि की जीवनी उपन्यास रूप में है। अपनी जातीयता, आत्म-गौरव तथा शान का ध्यान मनुष्य को कितना रखना चाहिये; 'सर जाये तो जाये पर आन न जाने पावे' इसका ज्वलन्त उदाहरण इस पुस्तक में मिलेगा। प्रत्येक युवकों को इससे लाभ उठाना चाहिये। सचित्र पुस्तक का मूल्य १।) रुपया।

प्रतापी आल्हा और ऊदल--

यह इतिहास आपकी आँखों के सामने भारत के मध्य युग का सजीव चित्र चित्रण कर देगा—इसे पढ़कर आपके हृदय में अपने पूर्वजों के असीम साहस और देश पर बलिदान हो

जाने का जीता जागता चित्र अंकित हो जायगा । पुस्तक की प्रत्येक पंक्ति आपके रग २ में वीरता और स्वदेशाभिमान की लहर जाग्रत करेगी । देशद्रोहियों और कुलांगारों को उचित दण्ड देना, कर्तव्य-परायणता पर अपनी आहुति दे देने पर कटिबद्ध हो जाना—मान-मर्यादा की रक्षा के लिये जान हथेली पर रख रणांगण में कूद पड़ना आदि विषय आपकी धमनियों में उष्ण रक्त का संचार कर देंगे । इन दो वीरों ने अपनी जाति और देश की स्वतन्त्रता के लिये कितने २ युद्धों में शत्रुओं के दाँत खट्टे किये, इसका ज्वलन्त उदाहरण आप को इस पुस्तक के पृष्ठों पर मिलेगा । सचित्र पुस्तक का मूल्य १।) रुपया ।

मिश्र की स्वाधीनता का इतिहास—

भारत की प्राचीन सभ्यता को अपनाने वाला सर्वप्रथम मिश्र देश ही रहा है । प्राचीन मिश्र और आधुनिक मिश्र में क्या २ परिवर्तन हुए ? उसे हड़प जाने के लिये कितने बड़े २ षड्यन्त्र रचे गये ? कितनी क्रान्तियाँ हुईं ? कितने देशभक्तों को क्रांन्ति की इस भयंकर आँधी मे अपनी आहुतियाँ देनी पड़ीं ? क्रान्तिकारी नेता कौन थे ? मिश्र में जागृति का युग पैदा करने वाले कौन २ महात्मा थे ? क्रान्ति से उनको क्या सुविधायें मिलीं । अब मिश्र किस अवस्था में है, इसका सच्चा इतिहास जानने के लिये और अपने आपको स्वतन्त्रता प्राप्त करने के योग्य बनाने में यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी । सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) रुपया ।

इतिहास—

२॥) वीर दुर्गादास
१॥) संसार की भीषण राजक्रांतियाँ
२) झाँसी की रानी
१॥।) भारत सन् ५७ के बाद
१॥) मेवाड़ का इतिहास
१) मिश्र की स्वाधीनता का इतिहास
१) ईरान की स्वाधीनता का इतिहास

जीवन-चरित्र—

१।) अमरसिंह राठौर
१।) सम्राट अशोक
१।) प्रतापी आल्हा ऊदल
१।) देश के दुलारे
१) महाराणा प्रताप
१) पृथ्वीराज चौहान
१) वीर मराठा
१) हैदरअली
१॥) संसार के महान् राष्ट्र निर्माता

उपन्यास—

३) विलखी वीरांगना
१।।।) रहमदिल डाकू
१।।।) जवानी का नशा
१।।।) अपराधिनी
१।।।) हाहाकार
१।।) नदी में लाश
१।।) प्रेम के आँसू
१।।) मायावी संसार
१।।) जीवन का शाप
१।) प्यासी तलवार
१) होटल में खून
१) राजकुमारी
१) प्रेम का पुजारी
१) मजदूर का दिल
।।।) अपराधी कौन

हास्यरस—

१।) महाकवि साँड़
१) पानी पाँड़े
१) गुरु घंटाल
१) टालमटोल

१) छड़ी बनाम सोटा

१) मेरे राम का फैसला

१) लेखक की बीवी

१) मिस्टर तिवारी का टेलीफोन

॥।) मेरी फजीहत

नवयुवकोपयोगी—

१॥) स्वास्थ्य और व्यायाम चित्र संख्या ८०

१।) सरल-संस्कृत प्रवेशिका पृ० ४५०

१) सफलता के सात साधन

१) हमारा जीवन सफल कैसे हो

॥।) शांति की ओर

१) उन्नति का मार्ग

।) कहावतें

आध्यात्मिक—

३) उपनिषत्समुच्चय पृ० १२५०

॥।) शुद्धि सनातन है

॥) पूर्णिया शास्त्रार्थ

॥=) वैदिक वर्ण व्यवस्था

।=) ऋषि दयानन्द का सत्य स्वरूप

॥।) मेरे देवता

हमारी प्रचारित पुस्तकें—